अभिनव कृषि

वर्ष-8 अंक-1 मार्च, 2026 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

संरक्षित खेती, हाई-टेक बागवानी, फल-फूल, सब्जी उत्पादान, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

श्री श्याम एग्रो एजेन्सी

53, अक्षरधाम, थेकड़ा रोड़, बोरखेड़ा, कोटा (राज.)

मिनी फव्वारे सिस्टम

सोलर सिस्टम

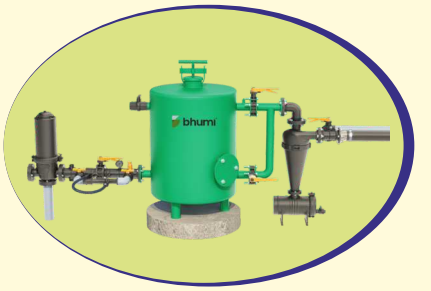

ड्रिप हेड यूनिट

ड्रिप सिस्टम

पी वी सी पाईप

फव्वारे पाईप

आवश्यक दस्तावेज की सूची :

- आधार कार्ड (मोबाईल नम्बर लिंक)
- जन आधार कार्ड (बैंक खाता लिंक)
- जमाबन्दी
- 500 रू. का स्टाम्प पेपर
- बिजली बिल
- 2 पासपोर्ट फोटो

Complete Guided to Drip Irrigation

लाभ :

- जल, खाद एवं बिजली का प्रभावशाली एवं किफायती उपयोग
- पानी के बहाव से होने वाले भूमि क्षय में अत्यधिक कमी ।
- फसल की सुरक्षा
- सभी प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त
- कम पानी में वांछित सिंचाई

विशेषताऐं

- सिंचाई व्यवस्था को बेहतर एवं किफायती बनाने हेत, ड्रिप पाइप एवं फिटिंग निम्नलिखित गुणों से परिपूर्ण है।
- उपयोग में आसान
- लाने ले जाने में सुगम, सरल एवं आसान
- लीकेज रहित
- लचीलापन होने में ऊँची–नीची भूमि में बिछाने में आसान
- आंतरिक सतह चिकनी होने से ऊर्जा की खपत में कमी
- उच्च रासायनिक प्रतिरोधक क्षमता
- जंग से सुरक्षित एवं धूप से बेअसर

केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा सब्सिडी में **70%** अनुदान प्राप्त।

Contact us : 9672595870, 9588016464

अभिनव कृषि

वर्ष-8 अंक-1 मार्च, 2026 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. विमला डूंकवाल
कुलगुरू, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.एम. शर्मा
सह निदेशक, प्रसार शिक्षा
संपादक

डॉ. योगेन्द्र कुमार मीणा
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. घनश्याम मीना
आचार्य (पशु विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
आचार्य (शस्य विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. एच.पी. मेघवाल
सह–आचार्य (कीट विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. रूप सिंह
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ. एम.सी. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. डी.के. सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एस.के. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली, बून्दी

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 50 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 200 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1500 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 7,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iv)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 4,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3000/-
(vii)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 5,000/-
(viii)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,500/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। इस पत्रिका में दिये गये विज्ञापनों के उत्पादों आदि की कृषि विश्वविद्यालय, कोटा किसी प्रकार की अनुशंसा नही करता है।

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एक आधारभूत स्तंभ है, जो GDP में लगभग 17–18 प्रतिशत योगदान देने के साथ–साथ आधी से अधिक कार्यबल (41-58%) को रोजगार प्रदान करता है। कृषि व्यवस्था राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल प्रदान करती है, ग्रामीण उपभोग को बढ़ाती है तथा कृषि उत्पादों के शीर्ष वैश्विक उत्पादकों में शुमार है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, सीमित संसाधन एवं जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के कारण कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं तकनीकी रूप से उन्नत बनाना आवश्यक हो गया है। ऐसे परिदृश्य में जायद खेती, संरक्षित खेती एवं हाई–टेक बागवानी जैसी आधुनिक पद्धतियाँ किसानों के लिए नए अवसर प्रदान कर रही हैं।

जायद खेती के अंतर्गत सब्जियाँ, मूंग आदि फसलों का उत्पादन कर किसान अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। संरक्षित खेती (पॉलीहाउस, शेडनेट हाउस) के माध्यम से मौसम के प्रतिकूल प्रभावों से फसलों को बचाकर उच्च गुणवत्ता का उत्पादन लिया जा सकता है। वहीं हाई–टेक बागवानी में ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, उन्नत पौध सामग्री एवं सटीक पोषण प्रबंधन जैसी तकनीकों का उपयोग कर उत्पादन एवं लाभ दोनों में वृद्धि की जा सकती है। फल एवं सब्जी उत्पादन में उन्नत किस्मों का चयन एवं उचित प्रबंधन आवश्यक है, जबकि मृदा प्रबंधन में मृदा परीक्षण एवं संतुलित उर्वरक उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही, पशुपालन प्रबंधन, फल–सब्जी संरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से किसान अपनी आय के अतिरिक्त स्रोत विकसित कर सकते हैं।

अभिनव कृषि पत्रिका के प्रस्तुत अंक में कृषकों एवं कृषि से जुड़े हितधारकों के लिए अत्यंत उपयोगी एवं समसामयिक विषयों को शामिल किया गया है। इस विशेषांक में जायद फसलों की उन्नत खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल एवं सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल–सब्जी संरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक जानकारी प्रदान की गई है।

यह विशेषांक किसानों को आधुनिक तकनीक को अपनाने, उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने तथा आय में वृद्धि करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करेगा। साथ ही, बदलती जलवायु परिस्थितियों में टिकाऊ कृषि प्रणाली विकसित करने में भी सहायक सिद्ध होगा। आशा है कि यह विशेषांक कृषकों, युवाओं एवं कृषि विशेषज्ञों के लिए ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

(महेन्द्र सिंह)

अभिनव कृषि

वर्ष-8 अंक-1 मार्च, 2026

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	हाइड्रोपोनिक खेती : भविष्य की स्मार्ट कृषि तकनीक इन्द्र भूषण मौर्य	1–3
2.	गेंदा की खेती : कम जोखिम, सुनिश्चित आय अनोप कुमारी, महेश चौधरी एवं योगेन्द्र कुमार मीना	4–5
3.	स्ट्रॉबेरी की वैज्ञानिक खेती योगेन्द्र कुमार मीणा, अनोप कुमारी एवं महेश चौधरी	6–8
4.	अमरूद की खेती : स्वाद, सेहत और कमाई का संगम महेश चौधरी, अनोप कुमारी एवं योगेन्द्र कुमार मीणा	9–10
5.	नींबू वर्गीय फलों में कीट एवं रोग प्रबंधन गुलाब चौधरी, सुरेश चंद कांटवा, अशोक चौधरी एवं विक्रमजीत सिंह	11–14
6.	कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में समन्वित नाशीजीव प्रबन्धन कैलाश चन्द्र अहीर, डी.एल. यादव एवं सीताराम यादव	15–17
7.	पश्चिमी राजस्थान में ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेती सीता चौधरी, रेणु चौधरी, स्नेहा राठौर एवं गरिमा सेन	18
8.	सफेद मूसली उत्पादन की उन्नत तकनीक राजेन्द्र गोचर एवं श्रवण कुमार यादव	19–20
9.	मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन–समय की मांग के. एम. शर्मा एवं राजेंद्र कुमार यादव	21–23
10.	फसल अवशेष प्रबंधनः आज की आवश्यकता आर. एस. नारोलिया, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सोनल शर्मा	24–25
11.	जैविक एवं प्राकृतिक कृषि में उपयोग हेतु गौ–मूत्र आधारित जैविक आदान श्रवण कुमार यादव, प्रीती देवतवाल एवं भवानी शंकर मीणा	26–29
12.	आधुनिक डेयरी फार्मिंगः विज्ञान, तकनीक और मुनाफे का संगम विक्रमजीत सिंह, अशोक चौधरी, सुरेश चंद कांटवा एवं गुलाब चौधरी	30
13.	पान का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धनः आय बढ़ाने के नए अवसर प्रियांशु त्रिपाठी एवं मुकेश कुमार नायक	31
14.	आदर्श पोषण वाटिका : संतुलित आहार एवं अतिरिक्त आमदनी का स्रोत हेमराज मीना, गोपाल लाल मीना, टी.एस. चैत्रा एवं मीनाक्षी मीना	32–33

हाइड्रोपोनिक खेती : भविष्य की स्मार्ट कृषि तकनीक

इन्द्र भूषण मौर्य

उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, राजस्थान

विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 9.8 बिलियन तक पहुँचने की सम्भावना है, जिसमें लगभग 68 प्रतिशत लोग शहरी क्षेत्रों में निवास करेगें। बढ़ते शहरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि लगातार कम होती जा रही है, जबकि जनसंख्या की वृद्धि के कारण भोजन की मॉग तेजी से बढ़ रही है। इसके साथ ही जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन होने से भूजल स्तर लगातार गिर रहा है। विशेषरूप से राजस्थान में 70 प्रतिशत ब्लाक डार्क जोन में आ चुके हैं, जो जल संकट की गंभीर स्थिति को दर्शाता है। परम्परागत खेती में अधिक कीटनाशकों का उपयोग एक गंभीर समस्या है जबकि हाइड्रोपोनिक खेती में कीटनाशकों का प्रयोग न के बराबर होता है। अतः इस तकनीक से तैयार सब्जियॉ पोषण से भरपूर और स्वास्थ्यवर्धन होती हैं। आज की वर्तमान परिस्थितियों में स्मार्ट कृषि तकनीकों को अपनाना समय की आवश्यकता बन गया है, और इन्ही में से हाइड्रोपोनिक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीक है, जो एक नई उम्मीद बनकर उभरी है।

आधुनिक खेती की हाइड्रोपोनिक तकनीक

हाइड्रोपोनिक तकनीक एवं कार्य सिद्धांत : हाइड्रोपोनिक खेती एक ऐसी उन्नत तकनीक है, जिसमें पौधों को मिट्टी के बिना केवल पानी और पोषक तत्वों के घोल में उगाया जाता है। इस प्रणाली में पौधों की जड़ों को एक विशेष संरचना (पाइप या चैनल) में रखा जाता है, जहॉ उन्हें आवश्यक सभी पोषक तत्व सीधे घोल के माध्यम से मिलते हैं।

छत पर हाइड्रोपोनिक सिस्टम से लेट्यूस की खेती

आवश्यक सभी पोषक तत्व पानी के माध्यम से सीधे जड़ों तक उपलब्ध कराना। यह तकनीक मुख्य रूप से तीन घटकों पर आधारित है–पौधों की जड़ें, पोषक तत्वों का घोल और आक्सीजन की उपलब्धता। जब जड़ों को सही मात्रा में ये तीनों तत्व मिलते हैं, तो पौधों की वृद्धि तेज होती है और उत्पादन अधिक मिलता है।

हाइड्रोपोनिक खेती से लाभ

- परम्परागत खेती की तुलना में 90 प्रतिशत तक पानी की बचत।
- 25–50 प्रतिशत तेज वृद्धि एवं 25–30 प्रतिशत अधिक उत्पादन।
- छत, बालकनी एवं कमरे में भी सम्भव।
- खरपतवार एवं मृदा जनित रोग की समस्या नहीं।
- कीटनाशकों की आवश्यकता बहुत कम।
- स्वास्थ्यवर्धक एवं सुरक्षित उत्पादन।
- कोरोना जैसी विकट परिस्थियों में भी एक ताजा सब्जियों की उपलब्धता।
- नियंत्रित वातावरण में सालभर उत्पादन सम्भव।
- कम जगह और कम समय में पौधों के जर्मप्लाज्म का उचित प्रबन्धन।

हाइड्रोपोनिक्स के प्रकार

- डीप वाटर कल्चर–इस तकनीक में पौधों को जालीदार गमलों में रखकर पोषक घोल पर तैरने वाले राफ्ट, फोम/पालीस्टाइरीन पर रखा जाता है। इसमें पौधों की जड़ें सीधे पोशक तत्वों से भरे पानी में डुबी रहती हैं। जड़ों को आक्सीजनयुक्त रखने के लिए पानी में एअर पम्प और एअर स्टोन की आवश्यकता होती है।
- न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक–यह विश्व में सबसे ज्यादा उपयोग की जाने वाली तकनीक है। इस तकनीक में पौधों को एक चैनल में उगाया जाता है जहाँ पतली परत में पोषक घोल लगातार जड़ों के पास बहता रहता है। चैनल में 30 सेमी की दूरी पर चौकोर या गोल आकार के सुराख बनाया जाता है जहॉ पौधों को नेटकप मे रखा जाता है।
- ड्रिप सिस्टम–इस तकनीक की संरचना न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक की तरह होती है परन्तु चैनल के अन्दर पौधों को ड्रिप के माध्यम से पोषक घोल दिया जाता है।
- एअरोपोनिक्स–इस तकनीक में जड़ों को हवा में लटकाकर उन पर घोल का छिड़काव किया जाता है।

हाइड्रोपोनिक ए–फ्रेम में पालक की खेती

वर्टिकल टावर में चौलाई की खेती

संरचना के आधार पर हाइड्रोपोनिक सिस्टम क्षैतिज, ए–फ्रेम और टॉवरनुमा हो सकते हैं। न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक और ड्रिप तकनीक प्रणाली को हाइड्रोपोनिक्स की क्षैतिज और ए–फ्रेम संरचना में उपयोग किया जाता है, जबकि वर्टिकल टॉवर में चौकोर या शड़कोणाकार तस्तरियों को एक दूसरे के उपर रखकर एक टॉवर का आकार दिया जाता है। प्रत्येक तस्तरियों में पौध लगाने के लिए चारों दिशाओं में एक–एक सुराख होते हैं। पोशक घोल को पंप द्वारा टैंक से सबसे उपरी तस्तरी में छोड़ा जाता है जो गुरूत्वाकर्षण के कारण स्वतः एक–एक तस्तरी से होता हुआ पोषक टैंक में इकट्ठा हो जाता है। यह प्रक्रिया एक निरन्तर अन्तराल पर लगातार चलती रहती है।

संरचना के आधार पर हाइड्रोपोनिक सिस्टम

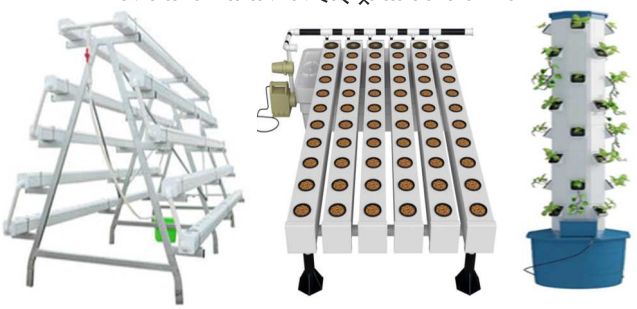

ए–फ्रेम क्षैतिज वर्टिकल टॉवर

हाइड्रोपोनिक्स के लिए उपयुक्त फसलें

पत्तेदार सब्जियॉ – लेट्यूस, पालक, चौलाई, धनिया, तुलसी, पोकचॉई
फल वाली सब्जियॉ – टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च
औषधीय पौधे– पुदीना, रोजमेरी, तुलसी, बाम्ही
फल – स्ट्राबेरी

हाइड्रोपोनिक खेती कैसे करें?

हाइड्रोपोनिक खेती सामान्य खेती की तुलना में खर्चीली और कठिन है जिसके लिए एक कुशल व्यक्ति की आवश्यकता होती है। साथ ही इस खेती में 24 घंटे विद्युत का होना आवश्यक है। प्रशिक्षण उपरान्त कोई भी व्यक्ति इस तकनीक से सफलतापूर्वक खेती कर सकता है। इस खेती में निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है।

(क) हाइड्रोपोनिक सिस्टम की स्थापना : वर्षभर सब्जियों का उत्पादन लेने के लिए यह जरूरी है कि हाइड्रोपोनिक सिस्टम को किसी वातुनुकुलित पालीहाउस/ग्रीनहाउस के अन्दर स्थापित किया जाये। परन्तु इसे शेडनेट में या छत/बालकनी पर भी स्थापित किया जा सकता है। जगह के अनुसार विभिन्न प्रकार के हाइड्रोपोनिक सिस्टम में से किसी एक को अपनाया जा सकता है। हाइड्रोपोनिक प्रणाली स्थापित करने के लिए मुख्यतः पाईप/चैनल, पानी की टंकी, मोटर एवं टाईमर, एअर पंप, नेट पाट्स, पोषक घोल, ई.सी एवं पी.एच. मीटर की आवश्यकता होती है।

नेट पार्टस

(ख) नर्सरी प्रबन्धन : हाइड्रोपोनिक सिस्टम की सफलता में नर्सरी का महत्वपूर्ण स्थान है। हाइड्रोपोनिक सिस्टम का उपयोग नर्सरी में तैयार पौधों को बढ़वार देने के लिए किया जाता है। नर्सरी में बीज को कोकोपिट या स्पंज में उगाया जाता है। जब ये पौधे 5–7 सेमी बड़े हो जाते हैं, तो इन्हें नर्सरी से सावधानीपूर्वक निकालकर मुख्य सिस्टम (हाइड्रोपोनिक्स) में स्थानान्तरित किया जाता है। प्रजाती एवं मौसम के अनुसार नर्सरी में पौधे 3–6 सप्ताह का समय ले सकते हैं।

प्रोट्रे में तैयार पौध

(ग) पोषक घोल का निर्माण एवं उपयोग : हाइड्रोपोनिक खेती की सफलता का मुख्य आधार पोषक घोल है। पोषक घोल बनाने के लिए घुलनशील उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। आजकल बाजार में हाइड्रोपोनिक का बना–बनाया घोल उपलब्ध हैं, जिन्हें उपयोग में लिया जा सकता है। परन्तु बड़े पैमाने पर खेती के लिए पोषक घोल बनाना आवश्यक होता है। हाइड्रोपोनिक के पोषक घोल में सभी खनिज तत्वों जैसे नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्सियन, मैगनिशियम, सल्फर, आयरन, जिंक, बोरान, मैग्नीज, कापर आदि का विद्यमान रहना नितान्त आवश्यक हैं। पोषक घोल तली में इकट्ठा न हो, इसलिए सभी आवश्यक खनिज तत्वों से दो प्रकार के घोल बनाये जाते हैं, जिन्हें "ए" और "बी" कहा जाता है। दोनों प्रकार के घोल की बराबर मात्रा पानी में मिलाकर

उपयोग किया जाता है। दोनों प्रकार के घोल की बराबर मात्रा को पानी में मिलाकर चैनल में सप्लाई की जाती है। पोशक तत्वों का घोल बनाना थोड़ा कठिन कार्य है। इसके तकनीकी प्रशिक्षण की जानकारी कृषि विश्वविद्यालय कोटा से प्राप्त की जा सकती है।

(घ) देखभाल एवं प्रबन्धन : ई.सी., पीएच, तापमान और पानी के स्तर की निरन्तर जॉच की जाती है। पौधों द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण उपरान्त पोशक घोल की सांद्रता कम होती जाती है। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए पोषक घोल की सांद्रता लगातार बनाये रखना नितान्त आवश्यक होता है। पोषक घोल की सांद्रता को इलेक्ट्रिकल कन्डक्ट्वीटी के आधार पर बनाए रखा जाता है क्योंकि ई.सी. पोषक तत्वों की मात्रा को दर्शाता है।

हाइड्रोपोनिक खेती की कई प्रणालियॉ प्रचलित हैं, लेकिन मुख्य रूप से पोषण फिल्म तकनीक (एन.एफ.टी.), ऐरोपोनिक्स और डीप वाट्र कल्चर मुख्य हैं। एन.एफ.टी तकनीक में पाइपों में पानी धीमी गति से निरन्तर प्रवाहित होता रहता है जबकि एरोपोनिक्स तकनीक में पानी को पौधों की जड़ों के उपर एक निश्चित अन्तराल पर छिड़काव किया जाता है। डीप वाट्र कल्चर में टैंक में भरे पानी के उपर तैरने योग्य थर्मोकोल की शीट का रखा जाता है।

लागत और आर्थिक लाभ : हाइड्रोपोनिक यूनिट की लागत उसके आकार और मॉडल पर निर्भर करती है। इस खेती में प्रारम्भिक लागत बहुत ज्यादा आती है, परन्तु अधिक उत्पादन, कम पानी, कम श्रम एवं उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पाद के कारण इस तकनीक से लम्बे समय में अच्छा लाभ प्राप्त होता है। इस तकनीक में सबसे ज्यादा लागत पालीहाउस संरचना और हाइड्रोपोनिक सिस्टम को स्थापित करने पर आती है। एक 500 वर्गमीटर नियंत्रित पालीहाउस में हाइड्रोपोनिक सिस्टम स्थापित करने पर कुल लागत रू. 50 से 100 लाख के बीच आती है।

कृषि विश्वविद्यालय कोटा में हाइड्रोपोनिक पर अनुसंधान कार्य : हाइड्रोपोनिक में टमाटर की खेती कृषि विश्वविद्यालय कोटा के संघटक महाविद्यालय (उद्यानिकी एव वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़) में हाइड्रोपोनिक के उपर अनुसंधान कार्य वर्ष2021 से किया जा रहा है। हाइड्रोपोनिक खेती आजकल छोटे पैमाने पर सभी जगहों पर प्रारम्भ हो गयी है। अनुप्रयोगों में पाया गया कि पत्तेदार सब्जियों ने हाइड्रोपोनिक में न केवल अच्छा प्रदर्शन किया बल्कि तैयार होने में भी कम समय लगा। पालक की पहली कटाई केवल 28–30 दिन में की गयी। एक अनुसंधान में शर्मा (2024) ने लेट्यूस, धनिया और रॉकेट को हाइड्रोपोनिक में पोषक घोल के छः प्रकार के ई.सी. मान (0.5, 1.0, 1.5, 2.0, 2.5 और 3.0) और तीन पी.एच. मान (5, 6 और 7) पर उगाया और पाया कि तीनों पत्तेदार सब्जियों ने पोषक घाले के 1.5 से 2.0 ई.सी. और 5.0 पी.एच. पर अच्छा प्रर्दशन किया। एक अन्य अनुसंधान में, यादव (2025) ने लेट्यूस की चाईनीज येलो और ग्रेट लेक किस्म को तीन प्रकार के हाइड्रोपोनिक सिस्टम (क्षैतिज, ए–फ्रेम और वर्टिकल टावर) में पोषक घोल के चार प्रकार के ई.सी. मान (0.5, 1.0, 1.5 और 2.0) पर उगाया और 1.5 ई.सी को पौधों की बढ़वार और गुणवत्ता वाले लक्षणों के लिए अधिक प्रभावी पाया।

राजस्थान के जयपुर में ग्रीनफ्रेस्ट और एग्रो हाइड्रोपोनिक्स, कोटा जिले में एक्की फुड्स, उदयपुर में एग्रो बायोटेक एवं क्राइजेन बायोटेक के नाम से युवाओं ने हाइड्रोपोनिक स्टार्टअप प्रारम्भ कर विभिन्न प्रकार की सब्जियों का उत्पादन कर रहे हैं।

उद्यानिकी एव वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ में हाइड्रोपोनिक खेती का क्षैतिज मॉडल

हैदराबाद में सिम्पली फ्रेस 140 एकड़ में हाइड्रोपोनिक इकाई स्थापित कर विभिन्न प्रकार की सब्जियों का उत्पादन कर रहे हैं। वही पर अरबन किसान छत पर हाइड्रोपोनिक सिस्टम स्थापित कर व्यावसायिक पैमाने पर लेट्यूस का उत्पादन कर रहे हैं।

निष्कर्ष : हाइड्रोपोनिक खेती वर्तमान समय की एक उन्नत और टिकाउ तकनीक है, बढ़ती जनसंख्या, घटती भूमि और जल संकट जैसी समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रदान करती है। यदि इसे सही तरीके से अपनाया जाए, तो यह न केवल किसानों बल्कि शहरी समाज, युवाओं और पूरे देश के लिए एक नई क्रान्ति साबित हो सकती है।

गेंदा की खेती : कम जोखिम, सुनिश्चित आय

अनोप कुमारी, महेश चौधरी एवं योगेन्द्र कुमार मीना
कृषि महाविद्यालय, हिंडोली–बूंदी, कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

फूलों की खेती आज कृषि का वह क्षेत्र बन चुकी है जहाँ कम समय में अधिक और स्थिर आय की संभावनाएँ उपलब्ध हैं। भारत सरकार द्वारा पुष्प उत्पादन को उभरते हुए उद्योग का दर्जा दिए जाने के बाद फ्लोरीकल्चर किसानों के लिए एक सशक्त विकल्प के रूप में विकसित हो रहा है। इन फसलों में गेंदा, अपनी सरल खेती, कम लागत, शीघ्र उत्पादन और वर्षभर बनी रहने वाली बाजार मांग के कारण विशेष महत्व रखता है। हाड़ौती अंचल, विशेष रूप से बूंदी जिला, अपनी अनुकूल जलवायु, दोमट से मध्यम काली मिट्टी, नहर एवं ट्यूबवेल आधारित सिंचाई व्यवस्था तथा कोटा जैसे बड़े शहरी बाजारों की निकटता के कारण गेंदा उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त क्षेत्र है। यहाँ धार्मिक स्थलों, विवाह समारोहों, फूल मंडियों और सजावटी उद्योगों में निरंतर मांग रहने से गेंदा आसानी से विपणन हो जाता है और किसानों को मूल्य स्थिरता प्राप्त होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण हाड़ौती में गेंदा की खेती आज कम जोखिम में सुनिश्चित आय देने वाली फसल के रूप में उभर रही है और यह छोटे व सीमांत किसानों के लिए भी आय वृद्धि का एक विश्वसनीय माध्यम बनती जा रही है। गेंदा को "गरीब का फूल" कहा जाता है, फिर भी इसे सभी वर्ग पसंद करते हैं। इसके फूलों का उपयोग माला बनाने, पूजा–पाठ, शादी–समारोह, सजावट और गमलों में किया जाता है। नारंगी रंग के गेंदा फूलों में ल्यूटिन (पीला रंग) अधिक होता है, जिसका उपयोग पोल्ट्री उद्योग में मुर्गियों के दाने में किया जाता है, जिससे अंडे की जर्दी (योक) पीली हो जाती है। इसके अलावा गेंदा को खासतौर पर सब्जियों जैसे टमाटर, बैंगन, मिर्च, आदि के साथ अंतरवर्ती फसल के रूप में भी लगाया जाता है जिससे काफी हद तक सूत्रकृमि के नियंत्रण में सफलता मिलती है।

भूमि एवं जलवायु : हाड़ौती अंचल की जलवायु गेंदा खेती के लिए अनुकूल पाई जाती है। यह क्षेत्र उष्ण एवं अर्ध–शुष्क से उपोष्ण जलवायु वाला है, जहाँ वर्ष के अधिकांश भाग में पर्याप्त धूप उपलब्ध रहती है, जो गेंदा में बेहतर पुष्पन के लिए आवश्यक है। बीज अंकुरण एवं प्रारम्भिक पौध वृद्धि के लिए 18-30° सेल्सियस तापमान आदर्श होता है, जो रबी एवं जायद मौसम के दौरान सामान्यतः उपलब्ध रहता है। अतः इन मौसमों में बुवाई करने पर स्वस्थ एवं सशक्त पौध प्राप्त होती है। गेंदा के लिए अच्छी जल निकास वाली भुरभुरी दोमट से मध्यम काली मिट्टी, जिसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर्याप्त हो, सर्वोत्तम रहती है। मिट्टी का पीएच 6.0–7.0 गेंदा की वृद्धि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। मुख्य खेत में रोपाई से पूर्व भूमि की लगभग 25–30 सेमी गहराई तक जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बनाना चाहिए तथा भूमि तैयारी के समय अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद लगभग 25–30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मिलानी चाहिए। इससे मिट्टी की संरचना, जलधारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार होता है, जड़ प्रणाली सुदृढ़ बनती है और परिणामस्वरूप पुष्प संख्या, आकार एवं कुल उपज में वृद्धि होती है।

गेंदा की प्रजातियाँ : यह टैजेटिस जाति का फूल है, जोकि ऐस्टेरेसी कुल सें सबंध रखता है कि लगभग 33 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से खेती के लिए मुख्यतः अफ्रीकन गेंदा एवं फ्रेंच गेंदा ज्यादा उपयोग में आती है।

- **अफ्रीकन गेंदा (टैजेटिस इरेक्टा) :** इस प्रजाती का पौधा ऊँचा और मजबूत होता है जिसकी ऊँचाई लगभग एक मीटर या इससे से अधिक हो जाती है। इसके फूल बड़े आकार के (5–8 सेमी) और पीले–नारंगी रंग के होते हैं। यह ज्यादा उपज देता है और माला, सजावट और पूजा के लिए बहुत पसंद किया जाता है। कुछ प्रमुख प्रचलित किस्में : पूसा नारंगी, पूसा बसंती, पूसा बहार, अफ्रीकन जायंट येलो, अफ्रीकन जायंट ऑरेंज, क्रैकर जैक, एप्रिकॉट, गोल्डन एज, क्राउन ऑफ गोल्ड, मेन ऑफ द मून, ऑरेंज जुबली, सिल्वर साइड, सन जायंट, सुपर चीफ, इत्यादि।

- **एफ 1 हाइब्रिड :** अमिगो, कसमस, फायर लेडी, गोल्ड लेडी, ऑरेंज लेडी, इनका येलो, इनका गोल्ड, इनका ऑरेंज इत्यादि।
- **फ्रेंच गेंदा (टैजेटिस पेटुला) :** इसके पौधे तुलनात्मक रूप से आकार में छोटे (20–60 सेमी) होते है। पुष्प आकार में छोटे (3–5 सेमी) जोकि के लेमन पीले, सुनहरे पीले, या नारंगी रंग के लाल फूल होते है। यह गमलों, क्यारियों और सजावटी बागवानी के लिए अच्छा रहता है। **प्रमुख किस्में :** पूसा अर्पिता, पूसा दीप, हिसार ब्यूटी, हिसार जाफरी–2, रस्टि रेड, बोलोरो, बोनिता, बटरस्कॉच, कारमेन, क्यूपिड येलो, हार्मोनी, लेमनड्रॉप, मेलोडी, ऑरेंज लेमन, रस्टि रेड, रेड, सन येलो इत्यादि।

प्रवर्धन का तरीका : गेंदा के पौधे बीज व कलम (कटिंग) से दोनों तरीकों से बनाए जा सकते हैं। लेकिन बीज से उगाए गए पौधे ज्यादा मजबूत होते

हैं और फूल भी अधिक देते हैं। इसलिए खेती के लिए गेंदा के पौधे आमतौर पर बीज से ही तैयार किए जाते हैं। गेंदा की अच्छी और स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए सबसे पहले अच्छे, नए और साफ बीज चुनने चाहिए, क्योंकि पुराने बीजों से पौधे कम निकलते हैं। गेंदा के बीज काले और चमकदार होते हैं तथा एक ग्राम में लगभग 300–350 बीज होते हैं। गर्मी और बरसात के मौसम में एक एकड़ के लिए लगभग 250–300 ग्राम बीज तथा सर्दी के मौसम में 150–200 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। बीज जमने के लिए 18 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान अच्छा रहता है, इसलिए बुवाई से पहले बीजों को थायरम, कैप्टान या बाविस्टिन जैसी दवा से उपचार कर लेना चाहिए, ताकि रोग न लगें। बीज हमेशा ऊँची क्यारियों में बोने चाहिए, जिससे पानी भरने से बचाव होता है। क्यारी की चौड़ाई लगभग 1 मीटर व लम्बाई आवश्यकतानुसार रखी जा सकती है। क्यारी में सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिला दें। बीजों को पंक्तियों में बोएँ, दो पंक्तियों के बीच 6–10 सेमी की दूरी रखें और बीज बहुत गहरे न बोएँ, केवल 1–2 सेमी गहराई काफी है। ऊपर से हल्की मिट्टी, रेत या कम्पोस्ट डालकर ढक दें और चिड़ियों से बचाने के लिए थोड़ी घास–फूस रख सकते हैं। बुवाई के बाद हल्की सिंचाई करें और आवश्यकता अनुसार पानी देते रहें। इस प्रकार गेंदा की पौध लगभग 22–25 दिनों में खेत में लगाने के लिए तैयार हो जाती है।

पौध लगाने का समय : गेंदा की सबसे अधिक मांग त्योहारों, शादी–विवाह और धार्मिक आयोजनों के समय होती है, इसलिए यदि फसल की टाइमिंग सही रखी जाए तो दाम सामान्य दिनों से काफी अधिक मिल सकते हैं। दीपावली, धनतेरस, गोवर्धन, भैया दूज, मकर संक्रांति, महाशिवरात्रि, नवरात्रि, गणेश चतुर्थी तथा शादी के मुख्य सीजन में फूलों की खपत बहुत बढ़ जाती है। बेहतर कीमत पाने के लिए किसान बुवाई और रोपाई की तारीखें इस तरह तय करें कि फूल इन्हीं दिनों में अधिक मात्रा में तैयार हों। उदाहरण के लिए, दीपावली/शादी सीजन के लिए पौध सितंबर–अक्टूबर में, जबकि मकर संक्रांति–महाशिवरात्रि के लिए नवंबर–दिसंबर में लगाएँ। सामान्यतः सर्दियों की फसल के लिए बीज अगस्त–सितंबर में बोए जाते हैं और पौध सितंबर–अक्टूबर में खेत में लगाई जाती है। गर्मी की फसल के लिए बीज जनवरी–फरवरी में बोते हैं और फरवरी में पौध लगाते हैं। बरसात की फसल के लिए बीज मध्य जून में बोकर जुलाई के मध्य तक रोपाई की जाती है। बीज बोने के लगभग एक महीने बाद पौध खेत में लगाने योग्य हो जाती है। व्यावसायिक खेती में अफ्रीकन गेंदा के पौधे आमतौर पर 40 × 40 सेमी की दूरी पर तथा फ्रेंच गेंदा के पौधे 30 × 30 सेमी की दूरी पर लगाए जाते हैं, जिससे पौधों को पर्याप्त जगह मिलती है और फूल अच्छे आते हैं। पौधों की रोपाई हमेशा शाम के समय ही करनी चाहिए तथा पौधें के चारो ओर की मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देना चाहिए।

पिंचिंग (कली/शीर्ष तोड़ना) : कब और कैसे करें गेंदा में अधिक शाखाएँ निकलवाने और ज्यादा फूल पाने के लिए पिंचिंग बहुत जरूरी है। रोपाई के 20–25 दिन बाद, जब पौधे की ऊँचाई लगभग 15–20 सेमी हो जाए और ऊपर से नई कली दिखने लगे, तब पौधे का ऊपरी सिरा उँगलियों या साफ कैंची से हल्का तोड़ दें। इससे पौधे में साइड की शाखाएँ अधिक निकलती हैं और बाद में फूलों की संख्या बढ़ जाती है। यदि फसल लंबी अवधि की हो तो पहली पिंचिंग के 10–15 दिन बाद हल्की दूसरी पिंचिंग भी की जा सकती है। ध्यान रखें कि पिंचिंग बहुत देर से न करें, वरना फूल आने में देरी हो सकती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन : गेंदा की अच्छी उपज के लिए संतुलित खाद देना बहुत जरूरी है। खेत की तैयारी के समय सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट 25–30 टन प्रति हेक्टेयर मिट्टी में मिला दें। रासायनिक उर्वरकों में सामान्यतः नाइट्रोजन 120 किग्रा, फॉस्फोरस 100 किग्रा और पोटाश 100 किग्रा प्रति हेक्टेयर देना लाभकारी रहता है। फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा पौध लगाने के लगभग 30 दिन बाद और शेष आधी मात्रा 50–60 दिन बाद दें। इससे पौधे मजबूत बनते हैं, कलियाँ अधिक आती हैं और फूलों का आकार व संख्या दोनों बढ़ते हैं।

सिंचाई कार्यक्रम : पौध रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें। गर्मी के मौसम में भूमि परिस्थिती के हिसाब से गर्मियों मे 7–10 दिन के अंतराल पर तथा सर्दियों में 20–25 दिन के अंतर पर पानी देना पर्याप्त रहता है। बरसात के मौसम में केवल आवश्यकता होने पर ही सिंचाई करें और यह विशेष ध्यान रखें कि खेत में पानी जमा न हो, क्योंकि जलभराव से जड़ सड़न और रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है। फूल आने और तोड़ाई के समय खेत में नमी बनी रहनी चाहिए, इससे फूल ताजे और भारी बनते हैं।

कीट व रोग प्रबंधन : गेंदा की फसल में प्रायः एफिड (माहू), थ्रिप्स, सफेद मक्खी और पत्ती खाने वाले कीट दिखाई देते हैं। इनकी रोकथाम के लिए खेत साफ रखें, खरपतवार समय–समय पर निकालें और रोगग्रस्त पौधों को हटा दें। कीट अधिक होने पर नीम आधारित दवाएँ (जैसे नीम तेल 3–5 मिली प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर कृषि विशेषज्ञ की सलाह से उपयुक्त कीटनाशी का प्रयोग करें। रोगों में डैम्पिंग–ऑफ, पत्ती धब्बा और जड़ सड़न अधिक पाई जाती है, जिनसे बचाव के लिए बीज उपचार करें, जल निकास अच्छा रखें और अधिक नमी से बचें। रोग दिखने पर फफूंदनाशी दवाओं का समय पर छिड़काव करें। सही प्रबंधन से फसल स्वस्थ रहती है और उत्पादन में कमी नहीं आती।

फूल तोड़ाई, ग्रेडिंग एवं विपणन : गेंदा के फूल सामान्यतः रोपाई के 45–60 दिन बाद आने लगते हैं। फूलों की तोड़ाई सुबह या शाम के समय करें, जब फूल पूरी तरह खिले हों लेकिन मुरझाए न हों। तोड़ते समय फूल के साथ छोटी डंडी रहने दें, इससे ताजगी बनी रहती है। तोड़ाई के बाद फूलों को छायादार जगह पर रखें और आकार, रंग व गुणवत्ता के अनुसार छाँट (ग्रेडिंग) कर लें। बड़े, ताजे और एकसार रंग वाले फूल अलग रखें, ताकि बाजार में बेहतर दाम मिल सके। हाड़ौती क्षेत्र में गेंदा की मांग धार्मिक स्थलों, शादी–समारोहों और शहरों (जैसे कोटा, बूंदी) की फूल मंडियों में बनी रहती है, इसलिए फूलों को स्थानीय मंडी, थोक व्यापारी, मंदिरों, इवेंट आयोजकों और माला बनाने वालों को सीधे बेचने पर अधिक लाभ मिलता है। फूलों को हवादार टोकरियों या छिद्रदार थैलों में भरकर ले जाएँ और देर न करें, क्योंकि गेंदा जल्दी मुरझाता है। नियमित तोड़ाई से पौधों में नई कलियाँ आती रहती हैं और कुल उत्पादन बढ़ता है।

उपज : गेंदा की सही किस्म, समय पर रोपाई, संतुलित खाद, उचित सिंचाई और पिंचिंग करने पर अच्छी पैदावार मिलती है। सामान्य परिस्थितियों में अफ्रीकन गेंदा से प्रति एकड़ लगभग 40–50 क्विंटल फूल प्राप्त होते हैं, जबकि फ्रेंच गेंदा से 25–35 क्विंटल प्रति एकड़ उत्पादन होता है। यदि खेत की तैयारी अच्छी हो, जल निकास ठीक हो, कीट–रोग का समय पर नियंत्रण किया जाए और नियमित तोड़ाई की जाए, तो अफ्रीकन गेंदा की उपज 50–60 क्विंटल प्रति एकड़ तक भी पहुँच सकती है।

स्ट्रॉबेरी की वैज्ञानिक खेती

योगेन्द्र कुमार मीणा, अनोप कुमारी एवं महेश चौधरी
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि महाविद्यालय, हिंडोली, बून्दी, कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी

स्ट्रॉबेरी, जिसका वानस्पतिक नाम फ्रेगेरिया अननासा है, रोजेसी कुल का सदस्य है। इसका पौशा शाकीय, छोटा, कोमल तथा बहुवर्षीय होता है। तना नाम मात्र का तथा पूर्ण विकसीत त्रिपत्री पत्तियाँ होती है। यह दो अन्य जातियों (फ्रेगेरिया चिलयोनसिस एवं फ्रेगेरिया बरजीनियाना) के प्राकृतिक संकरण से विकसीत किया गया है। स्ट्रॉबेरी के फल बड़े लुभावने, रसीले एवं पौष्टिक होते है। फल मध्यम आकार के (10–15 ग्राम), चित्ताकर्षक सुवास और सिंदूरी रंग लिए हुए बहुत ही नरम होते है। इसका खाने योग्य भाग लगभग 98 प्रतिशत होता है। इसके फलो में विटामिन सी तथा लोहा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं (सारणी 1)। स्ट्रॉबेरी अपने विशेष स्वाद एवं रंग के साथ–साथ औषधीय गुणो के कारण भी एक महत्वपूर्ण फल है। इसके फलो का उपयोग कई मूल्यसंवर्धन उत्पाद जैसे आइसक्रीम, जैम, जैली, कैंडी, केक इत्यादि बनाने के लिए किया जाता है। स्ट्रॉबेरी की खेती अन्य फलवाली फसलो की तुलना में कम समय में ज्यादा मुनाफा दिला सकती है क्योकि यह अल्प अवधि (4–5 महिने) में ही फलत देने वाली फसल है।

भारत में कुछ वर्षो पूर्व तक इसकी खेती केवल पहाड़ी क्षेत्रो जैसे उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर घाटी, महाराष्ट्र, कालीमपोंग इत्यादि जगहो तक ही सीमित थी। परन्तु वर्तमान में नई उन्नतशील प्रजातियों के विकास सें इसको उष्ण–कटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है जिसके कारण यह मैदानी भागों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, आदि राज्यों में अपनी अच्छी पहचान बना चुकी है। परन्तु अभी भी इसकी तकनीकी जानकारी के अभाव में काफी किसान भाई इसकी खेती करने में अपने आपको असहज महसुस करते है। अतः प्रस्तुत लेख में इसकी वैज्ञानिक तरीके से खेती कैसे करे के बारे में विस्तारपूर्वक समझाया गया है जिससे किसान भाई उच्य उत्पादन व गुणवता प्राप्त करके अधिकाधिक लाभ अर्जित कर सके।

सारणी 1. स्ट्रॉबेरी में पाये जाने वाले पोषक तत्व प्रति 100 ग्राम में

तत्व	मात्रा	तत्व	मात्रा
पानी (ग्राम)	92	वसा (ग्राम)	0.5
प्रोटीन (ग्राम)	0.7	पोटेशियम (मि.ग्रा.)	164
कार्बोहाईड्रेट (ग्राम)	7.0	विटामिन ए (आई.यू.)	60
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	21.0	थायामिन (मि.ग्रा.)	0.03
रेशा (ग्राम)	0.5	राइबोफ्लेविन (मि.ग्रा.)	0.07
फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	21.0	अम्लता (प्रतिशत)	0.9–1.8
लोहा (मि.ग्रा.)	0.4	विटामिन सी (मि.ग्रा.)	60.0
शुगर (प्रतिशत)	5.0	सोडियम (मि.ग्रा.)	1.0
मैग्निशियम (मि.ग्रा.)	10	नियॉसिन (मि.ग्रा.)	0.60

जलवायु : स्ट्रॉबेरी शीतोष्ण जलवायु की फसल है, परन्तु नई एवं उन्नतशील किस्मों के विकास सें इसको अब समशीतोष्ण एवं उष्ण–कटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह कम प्रकाश अवधि (शॉर्ट डे) वाला पौधा है जिसमें पुष्पन प्रारम्भ होने के लिए लगभग 10 दिनो तक 8 घण्टे से कम प्रकाश अवधि की जरूरत होती है। पौधो की अच्छी बढवार के लिए दिन का अधिकतम तापमान 22 डिग्री सेन्टीग्रेड एवं रात का तापमान 7–13 डिग्री सेन्टीग्रेड उपयुक्त माना गया है। इसके फूलों व नाजुक फलों को पाले से बचाव के लिए निम्न सुरंग तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है।

भूमि : स्ट्रॉबेरी की खेती लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है लेकिन अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पाद लेने के लिए अच्छे जल निकास वाली, जीवांशयुक्त हल्की बलुई दोमट मृदा, जिसका पी. एच. मान 5.5 से 6.5 के मध्य हो, उपयुक्त रहती हैं। मृदा में कैल्शियम नामक तत्व की अधिक मात्रा से पौधे की पत्तियां पीली पड़ जाती है। क्षारीय एवं सुत्रकृमि ग्रसित भूमि भी स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए उपयुक्त नही रहती है।

खेत की तैयारी तथा मिट्टी का सौरीकरण : स्ट्रॉबेरी उथली जड़ वाला पौधा है अतः रोपाई के पूर्व खेत को भली भांति तैयार कर लेना चाहिए। इसके लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2–3 जुताई देशी हल से करके पाटा चलाकर मिट्टी को अच्छी तरह भुरभुरा बना लेना चाहिए। यदि मिट्टी में किसी कवक या बीमारी का प्रकोप हो तो उसे उपचारित कर ले, इसके लिए गर्मीयों में जब तापमान 40 से 45 डिग्री से. के मध्य हो, मृदा सौर्यीकरण कर लेना चाहिए। सौदर्यीकरण करने हेतु क्यारियों को हल्का नम कर या हल्की सिंचाई कर, 200 गेज की प्लास्टिक की पारदर्शी फिल्म से 6–8 सप्ताह तक ढक कर रखे। प्लास्टिक फिल्म के किनारों को मिट्टी से ढंग देना चाहिए, ताकि हवा अंदर प्रवेश ना कर सके। इस प्रक्रिया से प्लास्टिक फिल्म के अंदर का तापमान 48–56 से.ग्रे. तक पहुंच जाता है, जिससे मिट्टी में माजूद हानिकारक कीट, बीमारियों के बीजाणु तथा कुछ खरपतवारों के बीज भी नष्ट हो जाते है। आजकल इस कार्य हेतु कई तरह के रसायनो का भी प्रयोग किया जाता है।

स्ट्रॉबेरी की किस्में : भारतवर्ष में स्ट्रॉबेरी की बहुत सी किस्में उगाई जाती हैं परन्तु व्यावसायिक फल उत्पादन के लिए सही किस्मों का चुनाव बहुत जरूरी है। किस्मों का चयन क्षेत्र की जलवायु एवं मृदा की विशेषताओ को ध्यान में रखकर ही करे। देश में उगायी जाने जाने वाली कुछ प्रमुख किस्में इस प्रकार हैः– चान्डलर, फेस्टिवल, विन्टर डॉन, फ्लोरिना, कैमा रोजा, ओसो ग्रैन्ड, ओफरा, स्वीट चार्ली, गुरिल्ला, टियोगा, सीस्कैप, डाना, टोरे, सेल्वा, बेलरूवी, फर्न, पजारो, इत्यादि।

क्यारियां तैयार करना : स्ट्रॉबेरी के व्यावसायिक उत्पादन के लिए जमीन की सतह से लगभग 25–30 से.मी. ऊंची उठी हुई क्यारियां (रेज्ड बैड) बनाये। क्यारियों की चौड़ाई 100–120 से.मी. तथा लम्बाई खेत की स्थिति के अनुसार रखी जा सकती है। क्यारियों की देखभाल तथा विभिन्न कार्य करने के लिए दो क्यारियों के बीच में 40–50 सें.मी. चौड़ा खाली स्थान (रास्ता) रखा जाता है। उठी हुई क्यारियां बनाने से अधिक जल आसानी से बाहर निकल जाता है जिससे बीमारियों का प्रकोप कम होता है साथ ही बूंद–बूंद सिंचाई यंत्र स्थापित करने में भी आसानी रहती है।

उठी हुई क्यारियां पर बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली

प्रवर्धन : स्ट्राबेरी का प्रवर्धन मुख्यतः रनर्स (लता को पकड़ने वाली नोक) द्वारा किया जाता है जोकि वानस्पतिक प्रवर्धन का ही एक भाग है। एक पौधे से लगभग 7–15 रनर्स प्राप्त हो जाते हैं। बड़े स्तर पर प्रवर्धन के लिए सूक्ष्म प्रवर्धन (ऊतक प्रवर्धन) का प्रयोग करते हैं इस विधि सें विशाणु मुक्त पौधों का प्रवर्धन संभव है साथ ही इससे वर्षभर पौधे प्राप्त कर सकते हैं। खेत में लगाने हेतु 4–6 पत्तियों वाले पौधे उपयुक्त होते है।

रोपाई का समय एवं विधि : स्ट्रॉबेरी के पौधों को रोपने का सही–सही समय वहा की जलवायु पर निर्भर करता है। उत्तरी भारत में इसकी रोपाई सितम्बर से नवम्बर माह के मध्य की जा सकती है। रोपण करते समय यह ध्यान रहे कि रनर्स स्वस्थ, कीट एवं बीमारी रहित होने चाहिए। स्ट्राबेरी के पौधो के रोपण की दूरी उगायी जाने वाली किस्म, मृदा की भौतिक दशा, रोपण विधि, उगाने की दशा इत्यादि पर निर्भर करती है। कुछ स्थानों पर इसके रोपण की दूरी 30 x 60 से.मी. रखते है जिससे प्रति हैक्टेयर लगभग 55 हजार से 60 हजार पौधों की जरूरत होती है। लेकिन अधिक उपज लेने हेतु पोधे से पौधे एवं कतार से कतार की दूरी 30 से. मी. रखी जाती है यदि इस दूरी पर पौधों का रोपण करते है तो एक हैक्टेयर के लिये लगभग 1 लाख 11 हजार पौधों की जरूरत होती है।

खेतो में लहराती स्ट्रॉबेरी की फसल

सिंचाई : पानी लगाने का सही समय कई कारको जैसे मृदा प्रकार, मृदा में कार्बनिक पदार्थो की मात्रा, मौसम इत्यादि पर निर्भर करता है। स्ट्रॉबेरी के पौधे की जड़े जमीन में ज्यादा गहराई तक नही जाती एवं यह सतह पर ही फैलने वाला होता है अतः इसमें कम समय के अन्तराल पर नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई पौध रोपण के तुरन्त पश्चात् कर देनी चाहिए एवं उसके बाद 2–3 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहे। सिंचाई के लिए ड्रिप (टपका) सिंचाई प्रणाली उतम रहती है इस पद्धति द्वारा पौधों को उनकी आवश्यकता अनुसार पानी को बूँद–बूँद के रूप में जड़ क्षेत्र में उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रणाली में प्लास्टिक लाइनो द्वारा, पानी पौधों की जड़ों में सीधा तथा समान रूप से पहुचाया जा सकता है साथ ही कम पानी का प्रयोग करके अधिकतम पैदावार ली जा सकती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल के साथ–साथ उर्वरक, कीटनाशक व अन्य घुलनशील रासायनिक तत्वों को भी सीधे पौधों तक पहुँचाया जा सकता है। जब पानी के साथ–साथ पोषक तत्व भी पौधों को उपलब्ध कराये जाते है तो उसे फर्टीगेशन (फर्टीलाइजर+ईरीगेशन) के नाम से जाना जाता है। फर्टीगेशन में पूर्णतया घुलनशील या तरल उर्वरक ही प्रयोग किया जा सकता हैं।

खाद एवं उर्वरक : खाद एवं उर्वरको के उपयोग का मुख्य उद्देश्य पौधों के समुचित विकास एवं बढ़वार के साथ ही मृदा में अनुकूल पोषण दशाएं बनाए रखना होता है। उर्वरको के काम में लेने का उचित समय सामान्यतौर पर मृदा स्वभाव, पोषक तत्व, जलवायु और फसल के स्वभाव पर निर्भर करता है साथ ही इनकी मात्रा, मृदा की उर्वरता तथा फसल को दी गयी कार्बनिक खादों की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि सन्तुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक दिया जाये तो निश्चित रूप से पौधों की अच्छी बढवार और अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। अतः हमेशा मृदा जांच के उपरान्त ही खाद एवं उर्वरको का उपयोग करना चाहिए। सामान्यतः खेत तैयार करते समय 10 से 12 टन कम्पोस्ट खाद, 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20 कि.ग्रा. फास्फोरस व 15 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ की दर से डालना चाहिए। स्ट्रॉबेरी में फर्टीगेशन के रुप में एन.पी.के. 19:19:19 की 25 ग्राम मात्रा प्रति वर्गमीटर की दर से सम्पूर्ण फसल चक्र में देनी चाहिए। यह मात्रा 15 दिनो के अन्तराल पर 4–5 भागो में बांटकर देनी चाहिए। सुक्ष्म पोषक तत्वो का छिड़काव भी उत्पादन बढाने में सहायक होता है।

निराई–गुड़ाई : पौधे लगाने के कुछ समय पश्चात् उनके आस–पास विभिन्न प्रकार के खरपतवार भी उग आते है जो कि पौधो के साथ पोषक तत्वों, स्थान, नमी, वायु आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते रहते है, इसके साथ ही यह विभिन्न प्रकार की कीट एवं बीमारियों को भी आश्रय प्रदान करते है। अक्टूबर में रोपित पौधो से नवम्बर में फुटाव शुरू हो जाता है। फुटाव शुरू होने पर खेत की निराई–गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देनी चाहिए।

पलवार (मल्चिंग) बिछाना : स्ट्रॉबेरी उत्पादन में एक यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह कार्य जमीन की ऊपरी सतह पर को सूखे पत्तों, टहनियों या घास फूस से ढ़ककर किया जाता हैं। परन्तु आजकल पलवार बिछाने के लिए अधिकतर प्लास्टिक मल्च का प्रयोग किया जाता है। स्ट्रॉबेरी में इसका प्रयोग करने से फल सीधे मिट्टी के संपर्क में नहीं आते जिससे फलों को सड़ने से बचाया जा सकता हैं साथ ही यह खपतवारों का नियन्त्रण करने एवं सिंचाई की आवश्यकता को भी घटाने का कार्य करती है। पलवार के लिए सामान्यतया काले रंग की लगभग 50 माइक्रोन मोटाई वाली प्लास्टिक की फिल्म का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक फिल्म बिछाने का कार्य पौध रोपण के लगभग एक महीने बाद जब पौधे अच्छी तरह स्थापित हो जाएं तब करते है। क्यारियों में प्लास्टिक पलवार बिछाते समय पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी को ध्यान में रखते हुए छेद करते है जिससे पोधे आसानी से ऊपर आ जाएं। पलवार बिछाने से पूर्व ड्रिप (टपका) सिंचाई प्रणाली क्यारियों में व्यवस्थित कर दी जाती है।

निम्न सुरंग (लो–टनल) तकनीक का प्रयोग : शरद ऋतु (दिसम्बर–जनवरी) में जिस समय तापमान में काफी गिरावट आ जाती है खुले खेत में स्ट्रॉबेरी के पौधों को पाले से बचान के लिए निम्न सुरंग तकनीक का उपयोग काफी फायदेमंद हो सकता है जिससे विपरीत मौसम में भी अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। लो–टनल एक कम ऊँचाई वाली संरचना होती है जिसका निर्माण खुले खेत में ऊगाई जाने वाली फसल को कम तापमान/पाले से होने वाले नुकसान से बचाने के लिये किया जाता है। यह दूसरी संरचनाओ की अपेक्षा काफी कारगर एंव सस्ती तकनीक है जिसे तैयार करना काफी आसान होता है। लो–टनल संरचना में हरितगृह जैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। निम्न सुरंग (लो–टनल) तकनीक स्थापित करने के लिए अर्धचन्द्राकार लोहे के तारो

को 2–3 मीटर की दूरी पर स्थापित करते है। उसके बाद अर्धचन्द्राकार लोहे के तारो के ऊपर मध्य में स्सी बांध देते हैं इन तारो पर 50 माइक्रोन मोटा तथा 2 मीटर चौडी पारदर्शी प्लास्टिक की चादर बिछाकर इसकी लम्बाई वाले दोनों सिरे को को मिट्टी से दबा देते है जिससे तेज हवा चलने पर भी प्लास्टिक उड़े नहीं। निम्न सुरंग/पालीथिन की उँचाई लगभग 60–70 सें.मी. रखे। प्लास्टिक की फिल्म को दिन के समय हटा देते है तथा रात के समय पुनः ढक देते है ऐसा करने से सुरंग के अंदर मिट्टी के तापमान में वृद्धि हो जाती है जिससे पुष्पन जल्दि होता है और अच्छी फलत प्राप्त होती है। फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में जब तापमान बढ़ जाता है तो प्लास्टिक फिल्म को पूर्णतया हटा दते है।

फलों की तुड़ाई : स्ट्रॉबेरी के फलों की तुड़ाई का समय बाजार की दूरी के हिसाब से तय करते है। सामान्तया फलो की तुड़ाई आधे से तीन चौथाई भाग (2/3) के रंग बदलने के पश्चात् करते है। फलों को तुड़ाई डण्ठल सहित प्रातःकाल सूरज निकलने से पूर्व ही पूर्ण कर लेनी चाहिए। तोड़े हुये फलों को रखने के लिए ट्रे का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि स्ट्रॉबेरी के फल बड़े नाजुक होते है जिनको गहरे बर्तन में रखने से फलों की ऊंची परत के दबाव के कारण नीचे भरे फलों को नुकसान पहुँच सकता है। स्ट्रॉबेरी के फलो को 2–3 दिनो तक ही सुरक्षित रखा जा सकता है अतः तोड़ने के बाद फलों को ज्यादा समय तक नही रखना चाहिए। बिक्री हेतु बाजार में भेजने के लिए फलों को प्लास्टिक के छोटे डिब्बों में पैक करना चाहिए तथा बाद में इन डिब्बो को कौरूगेटिड फाइबर बोर्ड (सीएफबी) से बने बड़े डिब्बों में पैक करके भेजना चाहिए।

तुडाई के लिए तैयार फलफलो का छोटे डिब्बों में पैकिग

सीएफबी डिब्बों में पैकिग

उपज : स्ट्रॉबेरी के फलों की उपज कई बातो पर निर्भर करती है जिनमें मुख्यतया उगायी जाने वाली किस्म, जलवायु, मृदा, पौधों की संख्या, फसल प्रबंधन इत्यादि प्रमुख है। स्ट्रॉबेरी के प्रति पौल्हो सें एक मौसम में 500–600 ग्राम फल प्राप्त किये जा सकते है। एक एकड़ क्षेत्रफल में सामान्तया 80 से 100 क्विंटल फलों का उत्पादन हो जाता है। परन्तु यह उत्पादन अच्छे फसल प्रबंधन से बढाया भी जा सकता है।

भूस्तारी (रनर्स) उत्पादन : स्ट्रॉबेरी का प्रवर्धन भूस्तारी द्वारा होता है। अतः जैसे ही फूल व फल बनने बंद हो जाएं, क्यारियों से पलवार शीट हटा देनी चाहिए तथा पौधों को भू–स्तारी बनाने के लिए छोड़ देना चाहिए यह पहाड़ी क्षेत्रो में तो तापमान कम होने के कारण आसानी से बढवार कर लेते है परन्तु मैदानी क्षेत्रो में अधिक गर्मी एवं बरसात के कारण पौधे मर जाते है अतः इन्हे बचाने के लिए हरितगृह या किसी अनुकुल संरचना का प्रयोग करना चाहिए।

कीट एवं बीमारियां : स्ट्रॉबेरी से अच्छा उत्पादन लेने के लिये उनका कीट एवं बीमारियों से मुक्त होना अति आवश्यक है। स्ट्रॉबेरी में कई तरह के कीट एवं बीमारिया नुकसान पहुचाती है जिससे उपज में काफी कमी आ जाती है अतः सही समय पर इनकी पहचान करके दुर ही रखा जाये तो अच्छा है। कुछ प्रमुख कीट एवं बीमारियों की पहचान एवं उनका निदान इस प्रकार से है :

पर्णजीवी (थ्रिप्स) : यह सूक्ष्म आकार का (1 मि.मी. से छोटा) हल्के पीले, भूरे रंग का कीट होता है इस कीट के वयस्क और शिशु दोनों ही पत्तियों एवं पुष्पन से रस चूस कर क्षति पहुंचाते है। परन्तु पुष्पन के समय यह ज्यादा नुकसान पहुचाते है। नीम का तेल 3–5 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। मित्र कीट ओरियस जैसे शिकारी कीड़ों का उपयोग थ्रिप्स की आबादी को 80 प्रतिशत तक कम कर सकता है। रासायनिक नियंत्रण में इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एसएल 0.5 मिली प्रति लीटर पानी में या स्पिनोसैड 0.3 मिली प्रति लीटर पानी या डाइमेथोएट 30 ईसी 500 मिली/हेक्टेयर का प्रयोग करें।

लाल मकड़ी (रेड स्पाइडर माइट) : यह आठ पेरो वाला लाल रंग का कीट होता है, इसके शिशु और प्रोढ दोनों ही पौधों को नुकसान पहुंचाते है। यह कीट पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्तों पर धब्बे बन जाते हैं तथा उनकी वृद्धि रूक जाने से उपज कम हो जाती है। इसका प्रकोप गर्म और शुष्क मौसम में ज्यादा होता है। इस कीट के नियंत्रण के लिये पौधों पर सल्फर 1.5–2 ग्राम या ओमाइट 1 मि.ली. या कैल्थेन 18.5 ई.सी. 1–2 मि.ली या आबामेक्टिन 1.9 ईसी 1 मि.लि. दवा का प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

काला धब्बा : यह एक फफूंदी जनित रोग है, इससे प्रभावित पत्तियों पर काले रंग के धब्बे बनने प्रारम्भ हो जाते है, यह रोग जलवायु में आर्द्रता होने की दशा में अधिक फैलता है। इस रोग के प्रबंधन के लिए आवश्यक है की हल्की हल्की सिंचाई की जाय, रोगग्रस्त पौधों को खेत से बाहर करते रहना चाहिए। साफ सुथरी खेती पर ज्यादा जोर देना चाहिए। रोग की उग्र अवस्था में किसी फफुंदनाशी यथा मैंकोजेब, साफ या हेक्साकोनाजोल की 2 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी फफूंद या छाछिया (पाउडरी मिल्डयू) : इस रोग के लक्षण पहले पत्तियों की उपरी सतह पर एवं तनों के उपर छोटे–छोटे बैगनी रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते है। बाद में यह धब्बे बढ़ जाते है चूर्णी जैसे हो जाते है। इसकी रोकथाम के लिए केराथेन 0.1 प्रतिशत या केलिक्सिन 0.1 प्रतिशत या घुलनशील गन्धक 0.2 प्रतिशत घोल का प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें ।

एन्थ्रेक्नीज (श्याम वर्ण) एवं फल सड़न : यह रोग भी गर्म एवं आर्द्र मौसम में ज्यादा फैलता है। इसके कारण पत्तियों पर हल्के, गहरे काले रंग के धब्बे दिखाई देने लगते है। यह फलों को भी प्रभावित करता है। इससे गोल हल्के जलीयनुमा धब्बे फलो पर दिखाई देने लगते है। इससे बचाव के लिये हमेशा अच्छे जल निकास एवं खरपतवार मुक्त खेत ही में स्ट्राबेरी उगाये साथ ही स्वस्थ एवं रोग मुक्त रोपण सामग्री के साथ–साथ फसल चक्र अपनाये। रोग की उग्र अवस्था में किसी फफुंदनाशी यथा मैंकोजेब,साफ या हेक्साकोनाजोल की 2 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

ग्रे मोल्ड : यह कवक सम्पूर्ण पौधे (तना, पत्तियां, फल, फूल, पीटीओल) को नुकसान पहुंचाता है। परन्तु पुष्पन एवं फल लगाते समय यह ज्यादा नुकसान पहुंचाता है, इसके कारण कच्चे एवं पके फल खराब हो जाते है। प्रभावित भागो पर ग्रे–रंग के धब्बे बन जाते है। यह हवा एवं पानी से रोगग्रसित भाग से स्वस्थ्य पौधो में फैल जाता है। बारिश के दिनों में जब तापमान कम एवं आर्द्रता ज्यादा होती है इसके फैलने के लिए बहुत अनुकुल समय होता है अतः इसका सही समय पर बचाव जरूरी है। रोग की उग्र अवस्था में किसी फफुंदनाशी यथा मैंकोजेब, साफ या हेक्साकोनाजोल की 2 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

ग्रे मोल्ड से ग्रसित फल

अमरूद की खेती : स्वाद, सेहत और कमाई का संगम

महेश चौधरी, अनोप कुमारी एवं योगेन्द्र कुमार मीणा
कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी, कृषि महाविद्यालय, हिंडोली, बूंदी एवं प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

अमरूद केवल एक फल नहीं, बल्कि किसानों की आजीविका और आम जनमानस के पोषण का एक सशक्त आधार है। मिर्टेसी कुल का यह प्रमुख फलदार पौधा सिडियम वंश से संबंधित है, जिसका वैज्ञानिक नाम सिडियम ग्वाजावा है। उष्णकटिबंधीय अमेरिका से भारत पहुँचा अमरूद 17वीं शताब्दी के बाद धीरे–धीरे भारतीय कृषि संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया और आज यह देश के सर्वाधिक लोकप्रिय फलों में सम्मिलित है। सरल खेती, शीघ्र फलन क्षमता, कम लागत, तथा वर्षभर उत्पादन की क्षमता के कारण अमरूद किसानों के लिए एक सुरक्षित, स्थिर एवं लाभकारी फसल के रूप में स्थापित हो चुका है। यह लगभग सभी प्रकार की भूमि एवं जलवायु परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जिससे यह विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए एक भरोसेमंद विकल्प बनता है। स्थिर बाजार मूल्य, निरंतर मांग, आकर्षक रंग, मधुर स्वाद तथा पोषक तत्वों की प्रचुरता ने अमरूद को उपभोक्ताओं के बीच भी अत्यंत लोकप्रिय बना दिया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण अमरूद को "गरीबों का फल" तथा "उष्ण जलवायु का सेब" कहा जाता है। पोषण की दृष्टि से अमरूद एक अत्यंत समृद्ध फल है, जिसे कई गुणों में सेब से भी अधिक लाभकारी माना गया है। बार्बाडोस चेरी और आँवला के बाद अमरूद में विटामिन–सी की मात्रा सर्वाधिक पाई जाती है, जो शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, त्वचा स्वास्थ्य सुधारने तथा आयरन के अवशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। केवल फल ही नहीं, बल्कि अमरूद की पत्तियाँ भी औषधीय गुणों से युक्त होती हैं। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि पत्तियों में उपस्थित जैव–सक्रिय यौगिक पाचन तंत्र को संतुलित रखने में सहायक होते हैं तथा पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में इनका उपयोग उल्टी, दस्त एवं पेट संबंधी रोगों के उपचार में लाभकारी पाया गया है। इस प्रकार अमरूद का महत्व केवल पोषण तक सीमित न रहकर औषधीय और स्वास्थ्यवर्धक फल के रूप में भी स्थापित होता है।

जलवायु एवं भूमि : अमरूद उष्ण एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु का प्रमुख फल है। इसके पौधे सूखे की स्थिति को काफी हद तक सहन कर लेते हैं, परंतु पाले से अधिक प्रभावित होते हैं। अमरूद की सफल खेती के लिए 22-28° सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा शुष्क ऋतु में उच्च गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। मृदा की दृष्टि से देखे तो अमरूद की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में की जा सकती है, किंतु उत्तम जल निकास वाली बलुई–दोमट या दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। चूँकि पौधों की जड़ें मुख्यतः ऊपरी परत से पोषक तत्व ग्रहण करती हैं, इसलिए ऊपरी सतह का उपजाऊ होना आवश्यक है। अमरूद के लिए मृदा का पी.एच. मान 6.5–7.5 आदर्श रहता है, यद्यपि 8.0 तक की क्षारीय मिट्टी में भी संतोषजनक उत्पादन संभव है। अधिक क्षारीय मिट्टी में उकठा रोग का प्रकोप बढ़ता है, अतः ऐसी भूमि में विशेष प्रबंधन आवश्यक होता है।

उन्नत किस्में

अमरूद की सफल खेती का आधार सही किस्म का चयन है, क्योंकि प्रत्येक किस्म का प्रदर्शन स्थानीय जलवायु, मृदा, जल गुणवत्ता तथा प्रबंधन प्रणाली पर निर्भर करता है। इसलिए पौधे सदैव विश्वसनीय स्रोत अथवा सरकारी नर्सरी से ही प्राप्त करने चाहिए तथा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पौधे स्वस्थ, रोगमुक्त, सही ढंग से जुड़े हुए एवं कम आयु के हों। कुछ ङ्कमुख किस्मों के नाम एवं उनकी खासियत निम्नलिखीत है :

- **इलाहाबाद सफेदा :** इस किस्म का पौधे लम्बे एवं सीधे बढ़ने वाले होते है। फल गोल, चमकदार सतह, सफेद गूदे वाले तथा मीठे होते है।
- **लखनऊ–49 (सरदार) :** इसके पौधे छोटे, अधिक शाखायुक्त, फैलावदार तथा अधिक फलन वाले होते हैं। फल बड़े आकार के खुरदरी सतह वाले, गूदे का रंग सफेद तथा स्वाद में उत्तम होते है।
- **ललित :** यह 'एप्पल कलर' सें चयनित उन्नत किस्म है। फल ताजा खाने एवं प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त है। यह अधिक पैदावार वाली किस्म है जिससे रोपण के लगभग 6 वर्ष बाद 80–100 किलोग्राम फल/पौधा उपज मिल जाती है। सघन बागवानी के लिए भी यह उपयुक्त है क्योंकि इसके पौधे छंटनी के लिए अत्यधिक उत्तरदायी है। फल मध्यम आकार के लगभग 185–200 ग्राम वजन वाले तथा गूदा कड़ा एवं लाल रंग का होता है।
- **श्वेता :** यह भी एक अधिक उत्पादन वाली किस्म है। इसका पौधा मध्यम आकार का होता है। फल गोल, मुलायम कम बीज वाले, श्वेत आभायुक्त पीले रंग के मध्यम आकार के होते हैं जिन पर कभी–कभी लालिमा भी उभर आती है।
- **अर्का मृदुला :** इस किस्म का चयन इलाहाबाद सफेदा किस्म द्वारा किया गया। इसके पौधे मध्यम आकार के फैलने वाले होते हैं। फल गोल जिनका औसत वजन 180 ग्राम, गूदा सफेद, बीज मुलायम तथा कम संख्या में होते हैं। यह जैली बनाने के लिये अच्छी किस्म है।
- **अर्का अमूल्या :** यह प्रजाति इलाहाबाद सफेदा और सीडलेस का संकर किस्म है। पौधे मध्यम आकार के फैलने वाले वाले होते हैं। फल गोलाकार, मूलायम, कम बीज वाले सफेद गूदायुक्त होते है।
- **अर्का किरण :** यह भी संकर किस्म है जोकि कामसरी एवं बैंगनी लोकल किस्म से विकसीत की गयी है। गुदा कठोर एवं गहरे गुलाबी रंग का होता है। फलों का औसत वजन 90–120 ग्राम होता है।
- **इलाहाबाद सुर्खा :** इसके पौधे तेजी से बढ़ने वाले, अर्धवत्ताकार तथा घने होते हैं। फल बड़े तथा छिलका एवं गूदा दोनों लाल रंग का होता है। इसके फल मीठे, कम बीज वाले, सुवासयुक्त होते हैं।
- **हिसार सफेदा :** यह किस्म इलाहाबाद सफेदा व सीडलैस अमरूद के द्वारा तैयार की गई है। पौधे सीधे व अधिक बढ़वार वाले जिसके फल गोल व चमकदार, गूदा सफेद, कम बीज, अधिक मिठास एवं स्वाद वाले होते है।
- **हिसार सुर्खा :** यह किस्म एप्पल कलर अमरूद व बनारसी सुर्खा के द्वारा तैयार की गई है। पौधे लम्बे व फैलाव वाले होते है। फल गोल, छिलका हल्के पीले रंग का, गूदा गुलाबी व अधिक मिठास वाला होता है।

रोपण का समय एवं तरीका : अमरूद का रोपण वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में सर्वोत्तम रहता है, क्योंकि प्राकृतिक नमी से पौधों की स्थापना अच्छी होती है। जहाँ सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो, वहाँ फरवरी–मार्च में भी सफलतापूर्वक रोपण किया जा सकता है। रोपण से

पूर्व रेखांकन (ले–आउट) के अनुसार गड्ढों के केंद्र में खूँटी लगाकर स्थान चिह्नित करना आवश्यक होता है, जिससे पौधों की दूरी, समरूपता एवं संतुलन बना रहता है। बाग स्थापना हेतु वर्गाकार विधि सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। अमरूद के लिए 0.75 × 0.75 × 0.75 मीटर आकार के गड्ढे 6 × 6 मीटर दूरी पर खोदे जाते हैं। परंपरागत प्रणाली में प्रति हेक्टेयर लगभग 277 पौधे, सघन बागवानी प्रणाली (3 × 3 मीटर) में लगभग 1111 पौधे पौधे लगाए जा सकते हैं इससे उच्य उत्पादकता के साथ उच्य गुणवत्तायुक्त उत्पादन लिया जा सकता है। परन्तु इस तरह के बगीचों में देख–रेख की अधिक आवश्यकता पड़ती है साथ ही समय पर कांट–छांट भी करनी पड़ती है। इलाहाबाद सफेदा तथा ललित किस्म सघन बागवानी के लिये अधिक उपयुक्त है।

खाद एवं उर्वरक : खाद एवं उर्वरकों की मात्रा मृदा की उर्वरता, पौधों की आयु, किस्म एवं प्रबंधन प्रणाली पर निर्भर करती है। संतुलित पोषण से पौधों की वृद्धि, उत्पादन एवं फल गुणवत्ता में वृद्धि होती है। अतः मृदा परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। उर्वरक का प्रयोग फूल आने से लगभग एक माह पूर्व किया जाना चाहिए। खाद एवं उर्वरक मुख्य तने से 2–3 फुट दूरी पर, छतरी के नीचे डालना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों (जिंक, मैग्नीशियम, मैंगनीज) का 0.5 प्रतिशत घोल नई बढ़वार के समय छिड़काव लाभकारी होता है। पौधे की उम्र के हिसाब सें खाद एवं उर्वरको की अनुमानित मात्रा सारणी 2 में दर्शायी गयी है –

बहार नियंत्रण : अमरूद के पौधों में वर्ष में तीन बार फूल आते हैं, जिन्हें बहार कहा जाता है। पुष्पन काल सामान्यतः 25–45 दिन का होता है, जो किस्म, जलवायु और मृदा पर निर्भर करता है। एक ही पौधे से तीनों बहार लेने पर उत्पादन और फल गुणवत्ता दोनों में कमी आ जाती है, इसलिए व्यावहारिक रूप से एक पौधे से केवल एक बहार लेना उपयुक्त माना जाता है।बरसात वाली बहार में उपज अधिक होती है, लेकिन फल मक्खी व रोगों के कारण नुकसान और गुणवत्ता कम होती है, जिससे आर्थिक लाभ कम मिलता है। इसलिए यह बहार व्यावसायिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं मानी जाती। मृग बहार सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, क्योंकि इसके फल सर्दियों में पकते हैं, कीट–रोग कम होते हैं और फल गुणवत्ता एवं बाजार भाव बेहतर मिलता है। अमरूद में बहार नियंत्रण का उद्देश्य अनावश्यक फूलों को हटाकर केवल उपयुक्त बहार से गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करना है। इसके लिए छोटे बागों में हाथ से फूल तोड़े जाते हैं, जबकि व्यावहारिक रूप से सिंचाई रोकना सबसे सरल उपाय है, जिसमें फरवरी से जून तक पानी रोकने पर बसंत बहार के फूल झड़ जाते हैं। कुछ स्थानों पर जड़ों की खुदाई भी की जाती है, पर यह जोखिमपूर्ण होती है। सबसे प्रभावी एवं सुरक्षित विधि रासायनिक नियंत्रण है, जिसमें 15 अप्रैल से 15 मई द्ध50 ङ्कति ात पुष्पन अवस्थाऋ पर यूरिया 10–15 ङ्कति ात या एनएए 30 पीपीएम का छिड़काव कर फूलों को नियंत्रित किया जाता है, जिससे मृग बहार की अच्छी गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त होती है।

सारणी 2. खाद एवं उर्वरको की अनुमानित मात्रा (मात्रा किलोग्राम प्रति पौधे के हिसाब सें)

पौधे की आयु (वर्ष में)	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1–3	10–15	0.05–0.25	0.15–1.50	0.20–0.40
4–6	20–25	0.30–0.60	0.50–2.00	0.40–0.80
7–10	30–35	0.75–1.00	2.00	0.80–1.20
10 से अधिक	50	1.00	2.50	1.20

सिंचाई प्रबंधन : सिंचाई का समय मृदा प्रकार, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा एवं मौसम पर निर्भर करता है। रोपण के तुरंत बाद सिंचाई आवश्यक होती है। गर्मियों में 7–10 दिन तथा सर्दियों में 15–20 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फल विकास के समय पर्याप्त नमी अनिवार्य होती है। अमरूद की खेती में ड्रिप सिंचाई प्रणाली सर्वोत्तम मानी जाती है, जिससे जल संरक्षण के साथ उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

छत्रक प्रबंधन (कटाई–छँटाई) : कटाई–छँटाई का उद्देश्य पौधों को मजबूत ढांचा प्रदान करना है। अमरूद में फूल एवं फल नई फुटान पर आते हैं, इसलिए नियमित छँटाई आवश्यक है। प्रारंभ में यह देखना आवश्यक है कि मुख्य तने के तल से लगभग 70–90 सेमी. तक कोई शाखा न हो। उसके पश्चात् पौधे को इस ऊंचाई से काट देना चाहिये। कटान के बाद पौधे से बहुत सी शाखायें निकलती है परन्तु उनमें सें अलग–अलग दिशाओं में जा रही 3–4 शाखाऐं चुन ली जाती हैं जिनको 3–4 महिने बाद कुल लम्बाई की 50 प्रतिशत पुनः काट दिया जाता है। यह कार्य एक प्रक्रिया के तहत चलता है जिससे पौधे का एक ढांचा विकसीत हो सके जिसमें सम्पूर्ण भाग में प्रकाश पहुंच सके साथ ही बाग के सम–सामयिकी कार्य में भी आसानी रहे। काट–छाँट का समय ली जाने वाली बहार पर निर्भर करता है एवं यह जनवरी के अन्तिम सन्ताह से फरवरी मध्य, मई–जून एवं अक्टुबर में कर सकते है। मुग बहार लेने के लिए जनवरी के अन्तिम सन्ताह सें फरवरी मध्य, हस्त बहार के लिए मई–जून एवं अम्बे बहार के लिए अक्टुबर में कांट–छांट का कार्य करते है। कांट–छांट वाले स्थानो पर बोर्डो पेस्ट अथवा कॉपर आक्सीक्लोराइड का लेप अवश्य लगा देना चाहिए।

पादप सुरक्षा : अमरूद में कीट एवं रोगों का प्रकोप उत्पादन और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करता है, इसलिए समय पर पहचान एवं नियंत्रण आवश्यक है। प्रमुख समस्याओं में फल मक्खी, मिली बग, छाल भक्षक कीट, उकठा (विल्ट), फल–गलन रोग तथा जड़–गांठ सूत्र मि शामिल हैं। इनसे बचाव हेतु बगीचे की स्वच्छता, प्रभावित फलों व शाखाओं का नष्ट करना, गहरी जुताई, जल निकास की उचित व्यवस्था तथा आवश्यकता अनुसार फेरोमोन ट्रैप, रासायनिक छिड़काव और मृदा उपचार अपनाने चाहिए, जिससे फसल की गुणवत्ता व उत्पादन सुरक्षित रहता है।

तुड़ाई एवं उपज : अमरूद में फूल आने के लगभग 4.5–5 माह बाद फल परिपक्व होते हैं। पकने पर फलों का रंग हरे से पीले में बदलने लगता है, इसी अवस्था में सावधानीपूर्वक तुड़ाई करनी चाहिए। अधपके फल स्वाद में अच्छे होते हैं, इसलिए समय पर तुड़ाई आवश्यक है। फलों की उपज किस्म, प्रबंधन और बहार पर निर्भर करती है। सामान्यतः एक पूर्ण विकसित पौधे से 70–100 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं।

नींबू वर्गीय फलों में कीट एवं रोग प्रबंधन

गुलाब चौधरी, सुरेश चंद कांटवा, अशोक चौधरी एवं विक्रमजीत सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, हनुमानगढ़-II (नोहर), राजस्थान पशुचिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारतवर्ष में उगाए जाने वाले विभिन्न फलों में नींबूवर्गीय फलों का महत्वपूर्ण स्थान है, यहाँ नींबू की महत्वपूर्ण प्रजातियों में लेमन, माल्टा, सन्तरा, नींबू एवं मौसमी आदि प्रजातियों की व्यावसायिक खेती की जाती है। भारत में इन फलों की खेती उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों जैसे आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में मुख्य रूप से की जाती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से नींबूवर्गीय फल मनुष्य के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। नींबूवर्गीय फलों में विटामिन 'सी' भरपूर मात्रा में पाया जाता है, जो स्कर्वी रोग के उपचार मे लाभदायक है। इन फलों में विटामिन 'सी' के अलावा विटामिन 'ए', विटामिन 'बी' तथा खनिज तत्व भी अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं। अतः यह फल स्वास्थ्य की दृष्टि से आरोग्यकारी व पौष्टिकता से भरपूर हैं।

नींबूवर्गीय पौधों में फूल आने से फल पकने तक पौधों एवं फलों पर विभिन्न प्रकार की बीमारियों व कीटो का आक्रमण होता है। यदि समय से इनका वैज्ञानिक ढंग से नियंत्रण नहीं किया जाए तो उत्पादन में काफी नुकसान होता है। इसलिए पौधों से स्वस्थ फल और अच्छी उपज लेने के लिए बीमारियों व कीटो की जानकारी एवं इनका समय से उपचार अति आवश्यक है। जो इस प्रकार से है–

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

नींबू की तितली (पैपिलियो डेमोलेउस)

इसके डिम्भ नर्सरी में व नये पौधों की नयी पत्तियों को खाकर काफी क्षति करते हैं। आरम्भ में ये चिड़ियां के विष्ठा (बीट) की तरह होते हैं जो बाद में बढ़कर 5.0 सेमी लम्बे तथा पत्तियों की भाँति हरे रंग के हो जाते है। इन कीटों से सबसे अधिक क्षति अप्रैल–मई तथा अगस्त से अक्टूबर माह में होती है।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु क्यूनल्फोस 25% ई सी 15 मिली. प्रति लीटर अथवा डाइमिथोएट 30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

पर्ण सुरंगी (फिल्लोक्निस्तिस स्ट्रिला) : पर्ण सुरंगक कीट पौधों को नर्सरी अवस्था में मुख्य रूप से नुकसान पहुंचाते हैं तथा यह स्वस्थ नर्सरी उत्पादन में प्रमुख बाधक है। यह मुख्य रूप से नर्सरी रोपण के बाद अत्यधिक क्षति पहुँचाते हैं। यह सामान्यतः बसंत ऋतु (मार्च–अप्रैल) और शरद ऋतु (सितंबर–अक्टूबर) के दौरान आक्रामक होते है। इसके लार्वा पत्तियों में अनियन्त्रित आकार की सुरंगे बनाते हैं जो मुख्यतः कोमल पत्तियों पर आक्रमण करके प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु जब पेड़ो में नये फुटान हो रहे हो तो इन पर (फरवरी–मार्च व मई–जून) मे डाइमिथोएट 30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव किया जा सकता है।

नीम्बू साइला (डायफोराइना सिट्री)

यह कीट बसंत एवं वर्षा ऋतु में पौधे पर आक्रमण करके रस को चूसता हैं। लेकिन यह अधिक क्षति मार्च–अप्रैल में फूल और फल बनने के दौरान करता है। नींबू में साइला के कारण होने वाले नुकसान के मुख्य लक्षण हैं पत्तियां मुड़ना या सिकुड़ना, टहनियों का कम होना, और पत्तियों पर एक सफेद मोमी स्राव का दिखाई देना।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु डाईफेन्थुरान 50% डब्ल्यू पी / 2 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा डीसीट्रान प्लस 0.5 प्रतिशत अथवा नोवाल्यूरान 10% ईसी / 1 मिली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तराल पर दो बार करें।

सफेद मक्खी (डाइलायूरोडिस सीट्राई)

इसके निम्फ पत्तियों की अंदर की सतह पर एकत्रित होकर रस चूसते रहते हैं। निम्फ और प्रौढ़ दोनों ही पेड़ से रस चूसते हैं और मधु जैसा पदार्थ स्त्रावित करते है। जिससे काली कवक पत्तियों पर विकसित हो जाती है। जिसके कारण फल सहित पूरे भाग काले रंग की परत से ढक जाते हैं। जो कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करते हैं।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु डाईफेन्थुरान 50% डब्ल्यू पी / 2 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा नोवाल्यूरान 10% ईसी / 1 मिली. प्रति लीटर पानी अथवा करन्ज ऑयल 1 प्रतिशत का छिड़काव आवश्यकतानुसार करें।

मिली बग (प्लेनोकोकस सिट्री) : पत्तों और फलों पर सफेद रुई जैसा गुच्छा बनाना, पत्तों का पीला पड़ना, मुड़ना और गिरना, विकृत या बाधित पौधे का विकास और फलों पर कालिखयुक्त फफूंद जमना आदि मिलीबग द्वारा उत्पन्न किया जाता है। कीट पौधे का रस चूसते हैं, जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और कुछ मामलों में मर भी सकते हैं। वे चिपचिपा मधुरस (मीठा चिपचिपा पदार्थ) स्रावित करते हैं, जिस पर कालिखयुक्त

फफूंद उगती है और चींटियाँ आकर्षित होती हैं।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु डाईफेन्थुरान 50% डब्ल्यू पी / 2 ग्राम प्रति लीटर पानी या डीसीट्रान प्लस 0.5 प्रतिशत या करन्ज ऑयल 0.1 प्रतिशत का छिड़काव आवश्यकतानुसार करें।

काली मक्खी (एलूरोकेन्थास वोगलूमी) : इसके निम्फ प्रांरभिक अवस्था में ही पत्ती की कोशिकाओं से रस चूसना प्रारंभ कर देते हैं तथा पत्ती के निचली सतह में ही रहते हैं। काली मक्खियाँ एक वर्ष में अलग–अलग दो जीवन चक्र पूरे कर लेती हैं। प्रथम चक्र में प्रौढ़ मार्च–अप्रैल में तथा द्वितीय चक्र में जूलाई–अक्टूबर में निकलते हैं। काली मक्खी के अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों तथा पौधों पर शहद जैसा तरल पदार्थ एकत्रित होता है। जिससे काली मोल्ड (कवक) को पौधे तथा पत्तियों पर विकसित होने के लिए पर्याप्त भोज्य पदार्थ उपलब्ध हो जाता है और कवक विकसित होकर पत्तियों की ऊपरी सतह को काला कर देता है। जिससे पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि रूक जाती है एवं फूलों की सघनता भी कम हो जाती है जिससे फलोत्पदन भी कम होता है।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु ट्राइजोफास (40 ई.सी.) 25 मिली प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। ट्राईजोफोस के छिड़काव के 8.10 दिन बाद यदि मक्खी का प्रकोप दिखाई दे तो इथियोन (50 ई.सी.) का 20 मिली प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

सिट्रस एफिड (टोक्सोप्टेरा अरांटी) : इसके निम्फ एवं प्रौढ़ द्वारा मुलायम पत्तियों और प्ररोह का रस चूसने के कारण पत्तियां पीली होकर मुड़ने लगती हैं और कायिक विकृति के कारण सूखने लगती है। जिससे नये प्ररोह की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और पौधों की वृद्धि रूक जाती है। एफिड के द्वारा उत्सर्जित शर्करा युक्त द्रव पदार्थ पर सूटी मोल्ड (कवक) तथा फूल आने के समय एफिड का आक्रमण होने से फल लगने में कमी देखी गयी है।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु थाइमिथोक्जेम (25 डब्ल्यू. जी.) को 5 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा 10 दिन के बाद इमिडाक्लोप्रिड का छिड़काव करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो 8 दिन बाद डाईमिथोएट का छिड़काव करना चाहिए।

सिट्रस माईट (यूटेट्रानिक्स औरिटेंलिस) : माइट के अंडे बहुत छोटे, गोल और नारंगी रंग के होते हैं जो की पत्ती के ऊतकों में, धंसे रहते हैं जिनसे एक सप्ताह में निम्फ बन जाते हैं। यह 4.5 दिन तक पत्तियों के खाने के बाद त्वचा विमोचन करके प्रौढ़ माइट में परिवर्तित हो जाते हैं। मादा माइट लगभग 10 दिनों तक ही जीवित रहती हैं। गर्मियों में ये अपना जीवन चक्र 17.20 दिनों में पूरा कर लेती हैं। वयस्क माइट वर्ष भर में कई अतिरिक्त पीढ़ियों के माध्यम से गुजरती हैं।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु प्रोपार्जाइट 57% ईसी / 2 मिली प्रति लीटर पानी या ट्राईजोफॉस 40% ईसी / 5.2 मिली. प्रति लीटर पानी या डाईफेन्यूरॉन 50% डब्ल्यू पी / 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव 7 दिन के अन्तराल पर करें।

साइट्रस थ्रिप्स (सरटोथ्रिस सिट्राई) : साइट्रस थ्रिप्स खट्टे फलों पर नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे फलों पर चांदी या सफेद रंग के धब्बे, पपड़ीदार छिलके और कभी–कभी विकृतियां होती हैं इन कीटों से प्रभावित फल बेचे जाने योग्य नहीं रह पाते हैं।

नियंत्रण – इसके नियंत्रण हेतु फल की बेरी अवस्था पर 1.5 मिली लीटर डाइमेथोएट या थायोमिथोक्जाम 25% डब्ल्यू जी या एसिटामिप्रिड 20% एस पी / 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी या डाईफेन्थुरान 50% डब्ल्यू पी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिडकाव या ट्राईजोफॉस 40% ई सी / 2 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव 10दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार करें।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण नींबू का आर्द्र गलन रोग : आर्द्रगलन नर्सरी में नये पौधों या बीजांकुरो का सामान्य रोग है। यह उन सभी स्थानों पर होता है जहां पर नमी की अधिकता तथा जल निकास का उचित प्रबन्धन नही होता है। यह रोग पीथियम, फाइटोफ्थोरा एवं राइजोक्टोनिया नामक

कवको की प्रजातियों द्वारा होता है। इस रोग में पौधें भूमि सतह के पास गलकर गिरने लगते है और मर जाते है।

नियन्त्रण – उचित कवकनाशियों से भूमि का उपचार करना चाहिये। मृदा के निर्जर्मीकरण के लिये एक भाग फॉर्मलीन को 50 भाग जल में मिलाकर नर्सरी की मिट्टी को 4 इंच गहराई तक गीला कर देते है।

डाई बेक/विदर–टिप रोग : यह एक कवक जनित रोग है। यह रोग कोलेटोट्राइकम ग्लोइयोस्पोरोइड्स नामक कवक द्वारा होता है। यह रोग शाखाओं को प्रभावित करता है। रोगी शाखायें शीर्ष से लेकर नीचे की ओर सूखने लगती है। यह शीर्ष से नीचे की ओर सूखने की प्रक्रिया पीली होकर सूखती एवं गिरती हुई पत्तियों एवं तने पर गोंद के निर्माण के साथ बढ़ती जाती है। अन्ततः सम्पूर्ण पौधा सूख जाता है।

नियन्त्रण – सूखी हुई शाखाओं को काट देना चाहिये एवं इनके काटे गये सिरो को बोर्डो पेस्ट अथवा अन्य कॉपर युक्त कवकनाशी का लेप करके सुरक्षित कर देना चाहिये। ऐसे पेड़ पर कार्बेन्ड़ाजिम 0.1% अथवा कैप्टाफोल 0.2% घोल का तीन बार छिड़काव करना चाहिये। पौधों में यूरिया खाद का समुचित प्रयोग व जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये ।

चूर्णिल आसिता रोग : चूर्णिल आसिता रोग एक्रोस्पोरियम टिन्जिटैनियम नामक कवक के कारण होता है। चूर्णिल आसिता रोग शरद ऋतु में समान्यतः होने वाला रोग है और यह नींबू वर्गीय फसलों की लगभग सभी प्रजातियों पर दिखाई देता है। यह मैन्डरिन एवं स्वीट ऑरेन्ज की गम्भीर बीमारी है। चूर्णिल आसिता रोग होने पर पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद चूर्ण के समान कवक की वृद्धि के धब्बे दिखाई देते है। ये धब्बे बढ़कर पूरी पत्तियों को ढ़क देते है। पत्तियों की ड़ण्ठल एवं शाखायें भी इस सफेद फफूंद की वृद्धि से ढ़क जाती है। रोग ग्रसित पत्तियां पीली पडकर मुड़ने लगती है और परिपक्व होने से पहले ही झड़ जाती है। गम्भीर संक्रमण होने पर छोटे फलों पर भी चूर्णिल आसिता की सफेद चादर ढ़क जाती है और वे पकने से पहले ही पेड़ से गिर जाते है।

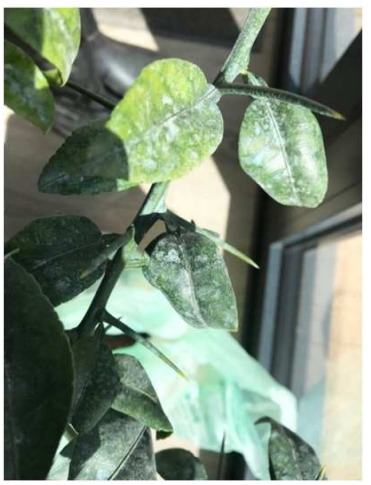

नियन्त्रण – रोग से बचने के लिये सुबह के समय 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से सल्फर का बुरकाव करने से इस रोग का प्रभावशाली नियंत्रण होता है। घुलनशील (वेटेबल) सल्फर 0.25% का 20 दिन के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिये। इससे रोग की उत्तम रोकथाम होती है। गम्भीर संक्रमण होने पर प्रभावित पौधे के भाग को तोड़कर सावधानी से नष्ट कर देना चाहिये।

गमोसिस रोग (फाइटोप्थोरा निकोटीआना) : नींबू वर्गीय पौधों में गमोसिस रोग का रोगकारक फाईटोफ्थोरा सिट्रोफ्थोरा और फाईटोफ्थोरा पैरासिटिका प्रजातियां है। यह कवक नम और ठंडी परिस्थितियों में पनपता है कवक पत्तियों पर झुलसा रोग जैसे लक्षण उत्पन्न करता है। प्रभावित पौधों की छाल से गोंद का स्त्राव होता है जिससे छाल पर भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं व कठोर हो चुके ढेर सरे गोंद के साथ दिखाई देते हैं। प्रभावित पेड़ की जड़ के पास मिट्टी हटाने से जल पार भाषाक, श्लेष्मी एवं लालिमा युक्त भूरे काले रंग की छाल दिखाई देती है। संक्रमण गंभीर होने पर अंततः पेड़ मर जाता है।

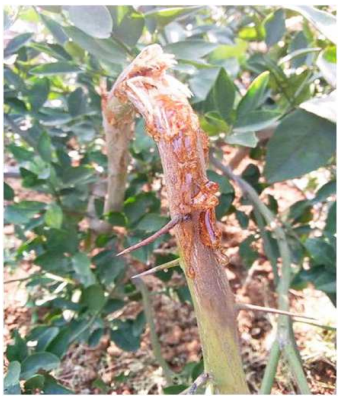

नियन्त्रण – गमोसिस के नियंत्रण के लिए रोगग्रसित छाल को खुरचकर निकल देना चाहिए एवं रिडोमिल एम.जेड. –72 (2.75 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ) के छिड़काव के साथ साथ पूरे पौधे एवं थाले को आच्छादित करते हुए ड्रेंचिंग करना चाहिए। यह प्रक्रिया 40 दिन के अंतराल पर दोबारा करनी चाहिए। साल में एक बार बोर्डो पेस्ट से 50. 75 सेमी ऊंचाई तक रंग देना चाहिए।

कैंकर रोग : यह जैंथोमोनस कॉम्पेस्ट्रिस पैथोवार सिट्री नमक जीवाणु से होता है। जो वर्षा ऋतु में होने वाला गंभीर रोग है यह प्रायः सभी नीम्बूवर्गीय फसलों को ग्रसित करता है। इस रोग के लक्षण मुख्यतः पत्तियों, शाखाओं, फलों, एवं डंठलों पर दिखाई देते हैं । शुरूआती दिनों में लक्षण पीले धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं जो निरंतर बढ़ते हुए कठोर, उभरे हुए भूरे रंग के छालों में बदल जाते हैं। ये छाले फलों के छिलके तक ही सीमित होते हैं परन्तु फलों का बाजार मूल्य काफी गिर जाता है जिससे किसानों को आर्थिक हानि अधिक होती है।

नियन्त्रण – नया बाग हमेशा स्वस्थ पौधों से लगायें तथा रोग के फैलाव को कम करने हेतु पर्ण सुरंगी कीट का नियंत्रण करें। तथा कटाई–छंटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2.5.3 ग्राम प्रति लीटर) के साथ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 से 500 पीपीएम) की दर से घोल बनाकर मार्च माह में छिड़काव की संस्तुति की जाती है।

हरितमा रोग (सिट्रस ग्रीनिंग) : नींबू का हरितमा रोग एक जीवाणु जनित (कैंडीडेट्स लिबरीबेक्टर एशियेटिकस) रोग है जो मुख्य रूप से सिट्रस सिल्ला (डायफोरिना सिट्राई) नामक कीट द्वारा फैलता है। नींबू का हरितमा रोग नींबू वर्गीय पौधो का सबसे विध्वंसकारी रोग है। यह एक अविकल्पी जीवाणु जनित रोग है। यह रोग नींबू की सभी प्रजातियों एवं किस्मों को हानि पंहुचाता है। पत्तियों का छोटा रह जाना, कम घनी पत्तियों का आना, मूल्यहीन फल, बहुत कम उपज इस रोग के मुख्य लक्षण है।

नियन्त्रण – रोग के वाहक कीट सिट्रस सायला का नियन्त्रण करे। इसमें रोग–मुक्त पौधों का उपयोग करना, संक्रमित पेड़ों को हटाना, कीटनाशकों या जैविक नियंत्रण विधियों से कीटों को नियंत्रित करना और स्वस्थ पेड़–पौधों के पोषण पर ध्यान देना भी शामिल है।

स्कैब रोग : नींबू का स्कैब रोग, एल्सीनो फॉसेटी नामक एक कवक के कारण होता है। इसका आक्रमण होने पर फल, पत्तियों एवं टहनियों पर हल्का अनियमित उभार युक्त बाह्य वृद्धि होने लगती है। यह स्कैब भूरे/धूसर या गुलाबी रंग के होते हैं और कालान्तर में गहरे रंग के हो जाते हैं। ये पत्तियों की तुलना में फलों पर अधिक होते हैं। स्कैब रोग से ग्रासित उठी हुई गांठ नींबू के कैंकर और स्कैब के रोगों के लक्षणों में भ्रमित करती है। कवक के बीजाणु आसानी से साल भर में नये फल और पत्तियों पर स्कैब घाव उत्पन्न करते रहते हैं। कवक के बीजाणु बगीचों में वर्ष तथा अतिरिक्त सिंचाई द्वारा और कभी–कभी छिड़काव प्रक्रिया के दौरान फैल जाते हैं।

नियन्त्रण– तांबे–आधारित कवकनाशी कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2.5–3 ग्राम प्रति लीटर) का प्रयोग करें। दो से तीन सप्ताह बाद फिर से छिड़काव करें।

सिट्रस ट्रिस्टिजा रोग : यह एक विषाणु जनित रोग है। यह रोग नींबू के माहू (टोक्सोप्टेरा सिट्रिसिडा) से संचारित होता है। इस रोग के लक्षण छोटी टहनियों एवं शाखाओं के मृत सिरा (डाई बैक) रोग, पत्तियों का पीला पड़ना एवं छोटे– छोटे फलों की भारी फलत से शुरूआत होती है। 7.8 वर्ष बाद रोगी पौधें की शाखायें पूरी तरह सूख जाती है और पौधा पूरी तरह सूखकर उकठा रोग से ग्रसित दिखाई देता है। कुछ पौधें रातों रात उकठा रोग के लक्षण दर्शाते है और वे दो या तीन दिन में पूर्णतः सूख जाते है। इसलिये ट्रिस्टिजा रोग को क्विक डेक्लाइन रोग भी कहते है।

नियन्त्रण– स्वस्थ एवं प्रमाणित बड–वुड का प्रयोग करना चाहिये। प्रतिरोधी रूट–स्टोक्स जैसे रफ लैमन, रंगपुर लाइम, ट्राईफोलियेट ऑरेन्जस, क्लियोपैट्रा मैन्डरिन आदि का वानस्पतिक प्रवर्धन के लिये प्रयोग करना चाहिये। इस रोग को रोकने का सर्वोत्तम उपाय पौधशाला एवं बागों में नींबू के माहू की समष्टि का कीटनाशको का प्रयोग करके नियन्त्रण करने से होता है। कीटनाशको जैसे इमिडाक्लोप्रिड (0.04%) का सामायिक छिड़काव ट्रिस्टिजा रोग को दूसरी बार फैलने से रोकता है।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में समन्वित नाशीजीव प्रबन्धन

कैलाश चन्द्र अहीर, डी.एल. यादव एवं सीताराम यादव

कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, अकलेरा, कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजकीय कृषि महाविद्यालय, नावा (राज.)

ग्रीष्मकालीन सब्जियों में कुष्माण्ड कुल की सब्जियों (कद्दू, लौकी, करेला, टिण्डा, ककड़ी, खीरा इत्यादि) का बहुत ज्यादा महत्व है। इनकी बुवाई मुख्यतया मार्च–अप्रैल माह में की जाती है। इन सब्जियों पर नाशीकीटों व रोगों का प्रकोप भी होता है जिससे उपज में कमी होती है। अतः यहा मुख्य नाशीकीट व रोग जो कुश्माण्ड कुल की सब्जियों में लगते है, उनके बारें में विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

(अ.) कुष्माण्ड कुल की सब्जियों के प्रमुख नाशीकीट :

1. कददू की लाल भृंग :

पहचान के लक्षण : पूर्ण विकसित ग्रब 12 मि.मी. लम्बी होती है। यह क्रिमी सफेद रंग की होती है। भृंग आयताकार व 5 से 8 मि.मी. लम्बी होती है। इसकी पृष्ठीय सतह चमकीली नांरगी लाल व उदर सतह कालें रंग की व छोटे सफेद बाल भी होते है।

वयस्क भृंग

नुकसान की प्रकृति : भृंग की नवजात अवस्था में कुश्माड कुल की सब्जियों को मार्च–अप्रैल माह में बहुत अधिक नुकसान पहुचाती है। इस कीट की ग्रब पौधे की जडों, भूमिगत तना व भूमि से सटे हुये फलों के अन्दर छेद करती है। भृंग बीजपत्र, फूलो व पतियों में छेद कर नुकसान पहुचाती है।

जीवन चक्र : यह भृंग सूखी पतियों, खरपतवारों, झाडियों व फसल अवशेषो में समूह में पायी जाती है। यह कीट गर्मी आते ही सक्रिय हो जाता है तथा इसका जीवन चक्र 60–85 दिन मे पूरा हो जाता है। मादा कीट गीली मृदा मे पौधे के पास 300 गोल पीले रंग के अण्डे अलग–अलग या समूह में देता है। अण्डों से शिशु 6–15 दिन में निकल आता है। ग्रब पौधे की जडो, भूमिगत तना को खाने लग जाता है। ग्रब अवस्था 13–25 दिनों में पूर्ण हो जाती है। कृमिकोश अवस्था मृदा में 20–25 से.मी. की गहराई पर होता है। शंकू अवस्था 7–17 दिन में तथा भृंग बनते ही पौधे को नुकसान पहुचाती है। पूरा जीवन चक्र 26–37 दिन मे पूरा हो जाता है। यह कीट मार्च–अप्रैल में अधिक सक्रिय होता है।

भृंग द्वारा नुकसान

समन्वित प्रबन्धन :

- फसल की कटाई उपरान्त खेत की गहरी जुताई करें।
- समय पर फसल की बुवाई करें।
- कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- खेत को खरपतवार व फसल अव ोशो से मुक्त रखे।
- खेतों में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिडकाव करते रहना चाहिये।
- अकुंरण के तुरंत बाद भूमि में 3–4 से.मी. की गहराई पर पौधे की जडों के पास 7 किलोग्राम कार्बोफ्यूरोन 3 जी. प्रति हैक्टर डालें व सिंचाई कर दें अथवा 900 मि.ली. सायनट्रानिलीप्रोल 10.26 ओ.डी. को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

2. फल मक्खी

खीरावर्गीय फल मक्खी : बेक्टोसेरा कुकुरबीटी

पहचान के लक्षण : इस कीट की मेगट पैर रहित होती है। मेगट गन्धी सफेद होती है। पूर्ण विकसित मेगट 9–10 मि.मी. लम्बी व बीच मे से 2 मि.मी. चौडी होती है। वयस्क मक्खी लाल भूरी व वक्ष पर पीले रंग की मार्किंग होती है।

खीरावर्गीय फल मक्खी

नुकसान की प्रकृति : यह फल मक्खी वर्ष भर सक्रिय रहती हैं, परन्तु सर्दी के मौसम में इसका जीवनकाल बडा होता हैं। सर्दी के दौरान यह फल मक्खी वृक्षों तथा पत्तियों के नीचे सुशुप्तावस्था में रहती हैं। मार्च माह में अधिक आर्द्रता के कारण इस मक्खी के उपद्रव की शुरूआत हो जाती हैं। यह फल मक्खी सभी प्रकार की बेलों वाली सब्जीयों, टमाटर, मिर्ची, अमरूद, नींबू, फूलगोभी तथा फूलों को नुकसान पहुँचाती हैं। इस फल मक्खी के शिशु (मेगट) फलों के गुदा (पल्प) को खाकर फलों को खराब कर देती हैं। मानसून की पहली बारिश के बाद इस फल मक्खी का प्रकोप खीरा वर्गीय सब्जीयों पर अधिक होता हैं, कभी–कभी इसका प्रकोप 100 प्रतिशत तक पहुँच जाता हैं।

इथोपियन फल मक्खी, डेकस सिलीयेटस : यह फल मक्खी भी अधिक ठंड़ के मौसम को छोडकर वर्ष भर सक्रिय रहती हैं। ठंड़ के मौसम में इसके प्यूपा सुशुप्तावस्था में खेतों की मृदा में रहते हैं। यह फल मक्खी सभी प्रकार की बेलों वाली सब्जीयों के कोमल व अपरिपक्व फलों को खाती हैं। अप्रैल के गर्म मौसम की शुरूआत से ही यह फल मक्खी सक्रिय हो जाती हैं। यह मुख्य रूप से करेले, कद्दू, तरबूज आदि को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं।

जीवन चक्र : बेकटोसीरा कुकुरबीटी : यह कीट वर्षभर सक्रिय रहता है, लेकिन ठंड में इसका जीवन चक्र लम्बा होता है। शंकू से वयस्क मक्खी सुबह के समय निकलती है। इस कीट का प्री–ओविपोजिसन समय 14 दिन का होता है व यह सर्दी में ज्यादा लम्बा होता है। यह मक्खी सामान्यतः कोमल फलों पर अण्डे देती है व कठोर फलों पर अण्डें नही देती है। सही जगह का चयन करने के बाद नुकीले अंडनिधानांग से फलो पर छेद कर दर्जन भर सफेद गोल अण्डें साय के समय देती है। मादा अण्डे देने के बाद चिपचिपे पदार्थ का स्त्राव करती है जिससे छेद में पानी प्रवेश नही कर पाता है। एक मादा लगभग 14 से 54 दिन में 58 से 95 अण्डे देती है। अण्डों से मेगट 1 से 9 दिन में निकल आती है। गर्मी के समय लार्वा का समय 3 दिन तथा सर्दी में 3 सप्ताह का होता है। पूर्ण विकसित लार्वा सडें हुए फलों से निकलकर 12–20 से.मी. ऊचे कुदती है। उचित जगह मिलने पर मृदा में 5 मि.मी. गहरी जाकर कृमिकोश अवस्था में चली जाती है। शंकू बैरल आकार का, हल्का भूरा व शंकू अवस्था वर्षा ऋतु मे 6 से 9 दिन व सर्दी में 3 से 4 सप्ताह की होती है। एक वर्ष में इस कीट की कई पीढियॉ पूरी हो जाती है।

इपीलेक्ना बीटल

समन्वित प्रबन्धन:

- **प्रतिरोधक किस्मों की बुवाई करे :** उन किस्मों की बुवाई करनी चाहिये जो कि फल मक्खी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती हो।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिये, जिससे मृदा में उपस्थित कोशित/प्युपा उपर आ जाते है तथा सूर्य की तेज रोशनी व मित्र कीटों द्वारा खाने से नष्ट हो जाते हैं।
- खेत को हमेशा साफ–सूथरा रखना चाहिये।
- फलों की तुड़ाई सही समय पर करनी चाहिये।
- फल मक्खी से ग्रसित फलों को एकत्रित कर जमीन में दबा देना चाहिये।
- फल मक्खी की निगरानी हेतु खीरा वर्गीय सब्जीयों में क्यू–ल्युर ट्रेप लगाना चाहिये।
- फलों को 5 प्रतिशत नमक के घोल में 60 मिनट रखना चाहिये, जिससे उनमें उपस्थित फल मक्खी के अण्ड़े नष्ट हो जाते है तथा कीटनाशकों का अवशेष भी नही रहता हैं।
- **जैविक कीट नियंत्रण :** परजीव्याभ स्पीसीज ओपिअस कम्पेनसेटस, ओपिअस परसुलकेटस, बायोसलेरस एरिसेनस, स्पेलेनगीया फिलिपीनेसिस आदि फल मक्खी के नियंत्रण के लिये उपयोगी पायी गयी हैं।
- फल मक्खी के प्रकोप को रोकने हेतु मैलाथियान 50 ईसी 50 मि. ली. + 500 ग्राम गुड़ या शक्कर को 50 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करे, अगर फल मक्खी का प्रकोप सतत हो तो 10 दिन के अन्तराल पर दुबारा छिड़काव करें।
- 900 मि.ली. सायनट्रानिलीप्रोल 10.26 ओ.डी. अथवा 200–250 मि.ली. फ्लूबेंडियामाइड 8.33 + डेल्टामेथ्रिन 5. 56 एस.सी. को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

3. इपीलेक्ना बीटल

पहचान के लक्षण: वयस्क गोलाकार, इलाइट्रा पीला भूरा होता है जिस पर काले रंग के धब्बे पाये होते है। ग्रब पीले रंग का व पूरे शरीर पर काटे होते है।

नुकसान की प्रकृति: ग्रब व वयस्क दोनो पतियो की बाहरी सतह को खुरच कर क्लोरोफिल को खाते है। जिससे पतियॉ छलनीनुमा हो जाती है। पतियों मे सिर्फ नसे ही शेष रहती है। अधिक प्रकोव होने पर फलों के पुष्पकोष भी नष्ट कर देते है। बाद में प्रभावित पतिया सूख जाती है व पौधे से गिर जाती है। पतियो पर छेद बन जाते है।

जीवन चक्र: एक मादा लगभग 120–180 अण्डे देती है। अण्डें सामान्यत: 30–35 समूह में व पतियो की निचली सतह पर देती है, अण्डे पीले रंग के, लम्बे, सिगार आकार के होते है। अण्डों से ग्रब 2–4 दिन में निकल आता है व काटेदार पीले रंग के होते है, जो पतियों की इपीडर्मिस को खाना शुरू कर देते हैं। कृमिकोष अवस्था पतियों पर पूरी करता है व शंकू अर्धगोलाकार होता है। पूरा जीवन चक्र 25–50 दिन मे हो जाता है।

समन्वित प्रबन्धन:

- शुरूआती अवस्था में कीट ग्रसित पतियों को एकत्रित कर नष्ट कर दें।
- कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें।
- खेतों में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिडकाव करते रहना चाहिये।
- प्रति हैक्टर 625 मि.ली. मैलाथियॉन 50 ई.सी. या 150–200 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें, कीट का प्रकोप अधिक होने पर 10 दिन के अन्तराल पर पुन: छिडकाव करे।

4. बरूथी:

पहचान के लक्षण: पूर्ण विकसित निम्फ अति सूक्ष्म व 0.33 मि.मी. लम्बी होता है। यह हल्का भूरा, शरीर पर दो ऑख जैसे धब्बे, चार जोडी टांगे व बहुत सक्रिय होता है। पूर्ण विकसित नर 0.52 मि.मी. लम्बा व चौडाई 0.30 मि.मी. होता है। मादा का शरीर अंण्डाकार, पायरीफॉर्म व रंग परिवर्तित होता है। यह लाल, हरा व जंगदार हरा रंग का हो सकता है व दो बडे रंगदार धब्बे शरीर पर होते है।

नुकसान की प्रकृति: यह एक सर्वभक्षी नाशी जीव है। इसके प्रौढ़ एवं शिशु फसल को नुकसान पहुँचाते है। ये फसल से रस चूसते रहते है। जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़कर कप की आकृति के समान हो जाती है। पत्तियों की निचली सतह चमकीली, चिकनी व गहरे हरे रंग में बदल जाती है। कलिका व नयी पत्तियाँ सूख जाती है। कलिका असामान्य रूप से बढ़ने लगती है व पुरानी पत्तियाँ थोड़ी मोटी हो जाती है।

बरूथी

जीवन चक्र: बरूथी मार्च से अक्टूबर तक सक्रिय रहती है। जैसे ही मार्च में मौसम गर्म होता है, यह कीट पतियों की निचली सतह पर जाला बना कर 60–80 अण्डें देती है। अण्डें गोंलाकार तथा 2 से 6 दिन में निम्फ निकल आते है। नवजात निम्फ हल्का भूरा तथा तीन जोडी टांगे होती है। यह जाले के अन्दर खाता है तथा 3 से 4 दिन मे चार जोडी पैर वाले निम्फ में बदल जाता है। निम्फ अवस्था 4 से 9 दिन की होती है, जों दों अवस्थाओं में पूर्ण होती है। वयस्क का जीवन 9 से 11 दिन का होता है। सक्रिय काल में इसका जीवन 9 से 19 दिनों में पूरा हो जाता है।

समन्वित प्रबन्धन:

- कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करे।
- फसल चक्र अपनावें।
- खेतों में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिडकाव करते रहना चाहिये।
- प्रति हैक्टर 500 मि.ली. डाइमिथोएट 30 ई.सी. या 600 ग्राम डाइफेन्थूरॉन 50 डब्ल्यु.पी. अथवा 400 मि.ली. स्पाईरोमेसिफेन 22. 90 एस.सी. को 500 लीटर पानी में घोल बना कर छिडकाव करें।

5. चैपा/मोयला:

पहचान के लक्षण: वयस्क कीट हल्के हरे रंग के होते है। कीट की पंख वाली अवस्था मे इसका रंग भूरा होता है।

नुकसान की प्रकृति: वयस्क एवं शिशु दोनों ही पौधों से रस चूसते है। जिससे पौधा कमजोर हो जाता है एवं बढ़वार रूक जाती है। कोमल शाखाओं एवं पत्तियों का रंग फीका पड़ जाता है। पत्तियाँ पीली पड़कर मुरझा जाती है तथा अधिक प्रकोप की अवस्था में झुलसी नजर आती है।

चैपा/मोयला

जीवन चक्र : यह कीट पंख वाली एवं बिना पंख वाली दोनों ही अवस्थाओं में अनिषेक प्रजनन करते है। मादा 20 से 50 शिशु को जन्म देती है। इसकी प्रजनन अवधि 2 सप्ताह है। शिशु अवस्था मौसम के अनुसार 3 से 20 दिन की होती है। व्यस्क होने से पूर्व कीट चार बार अवस्थायें बदलता है।

समन्वित प्रबन्धन :

- खेतों के आस–पास घास व पेड़ पौधों को नष्ट कर देना चाहिये।
- नत्रजन उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा ही कम में लेवें।
- आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।
- खेतों में नीम के बीजों के पाउडर या नीबौली के पाउडर का छिडकाव करते रहना चाहिये।
- मेलाथियान (50 ई.सी.) के 1 मि.ली./लीटर पानी में छोलकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन पर छिड़काव दोहरावें।

(ब.) कुष्माण्ड कुल की सब्जियों के प्रमुख रोग

1. तुलासिता /डाउनी मिल्डयू :

इस रोग के कारण पतियों की निचली सतह पर सफेद–सी भूरी फफूँद उलझी हुई रूई के रूप में दिखाई देती है। जिससे पतियों की निचली सतह पर बैंगनी भूरें रंग के धब्बे पड जाते है जिनका ऊपरी भाग पीला होता है तथा इन धब्बों पर चूर्ण–सी दिखाई देती है। समय के साथ ये धब्बे गलने लग जाते है। रोग ग्रसित पतियॉ पीली पडकर पौधे से गिर जाती है। पौधे की बढवार रूक जाती है। जो फल बनते है वो पूर्ण रूप से विकसित नही हो पाते है तथा उनका स्वाद भी अच्छा नही होता है।

डाउनी मिल्डयू

- मन्वित प्रबन्धन:
- खेत को खरपरवारो से मुक्त रखे।
- खेत को फसल अवशेषो से साफ रखे।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करे।
- कार्बेन्डिजम 2 ग्राम प्रति किलो बीज से बीजोपचार कर बुवाई करे।
- रोग का प्रकोप होने पर मेन्कोजेब की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करे।

2. चूर्णिल आसिता /छाछ्या /पाउडरी मिल्डयू रोग

इस रोग में फफूँद की वृद्वि पतियों पर सफेद चूर्ण में होती है जिससे पहले सफेद–भूरें रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में लाल–कत्थई रंग में बदल जाते है। इस कारण पतियॉ सूखकर मुड जाती है एवं पौधों का सही ढंग से विकास नहीं हो पाता है। फलों का विकास नही होता है तथा होता है उनका आकार भी भिन्न होता है।

चूर्णिल आसिता

समन्वित प्रबन्धन

- रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करे।
- खेत को खरपतवारों व फसल अवशेषो से मुक्त रखें।
- फसल चक्र अपनावे।
- केराथेन 1 मि.ली. प्रति लीटर अथवा थायोफिनेट मिथाईल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करे।

3. झुलसा/ब्लाइट :

इस रोग का प्रकोप पतियों के ऊपरी सिरे से शुरू होता है। रोग के लक्षण पतियों पर कालें–भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते है। परिणामस्वरूप पौधे का हरा भाग नष्ट होने लगता है एवं पतियॉ पीली पडकर ऊपरी किनारे से सूखकर गिर जाती है तथा पौधे के सिर झुके हुए नजर आते है।

समन्वित प्रबन्धन

- फसल चक्र अपनावे।
- खरपतवारों से खेत को साफ रखे।
- फसल कटाई पश्चात फसल अवशेषों को नष्ट कर दें।
- कार्बेन्डिजम 2 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित कर बुवाई करें।
- मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिडकाव करें।

झुलसा/ब्लाइट

4. श्यामवर्ण/एन्थ्रेकनोज

शुरूआत में पतियों पर पानी से भीगे हुए, पीले या हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते है, जो बाद में गहरे भूरे या काले हो जाते है। फलो पर गोल, धंसे हुये, काले धब्बे बन जाते है। अत्यधिक संक्रमण होने पर तना एवं डंठल भी प्रभावित होता है, जिससे पौधें की पतियॉ सुखकर गिर जाती है।

समन्वित प्रबन्धन

- फसल चक्र अपनावे।
- खरपतवारों से खेत को साफ रखे एवं रोगग्रस्त पौधें के अवशेषों को नष्ट कर दें।
- कार्बेन्डिजम 2 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित कर बुवाई करें।
- मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिडकाव करें।

श्यामवर्ण/एन्थ्रेकनोज

5. मोजेक रोग

यह रोग विषाणु जनित है, जो मुख्यतया कुकुम्बर मोजेक वायरस द्वारा होता है। मोयला (चैपा) इस रोग को फेलाता है। इस रोग का लक्षण सर्वप्रथम पतियों पर गहरे पीले रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होता है। ये धब्बे धीरे–धीरे फैलकर आपस में मिल जाते है जिससे पूरी पती पीली पड जाती है। रोग ग्रसित पतियॉ नीचे की ओर मुड जाती है व पतियों का आकार छोटी हो जाता है। जो फल बनते है वो आकार में छोटे व पूर्ण विकसित नही होते है।

मोजेक रोग

समन्वित प्रबन्धन

- रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करे एवं रोग ग्रसित पौधे को उखाड़ कर नष्ट कर दें।
- विशाणु को फैलाने वाले मोयला के नियंन्त्रण हेतु डाइमिथोएट 30 ई.सी. 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिडकाव करे।

पश्चिमी राजस्थान में ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेती

सीता चौधरी, रेणु चौधरी, स्नेहा राठौर एवं गरिमा सेन
कृषि महाविद्यालय, जोधपुर

ड्रैगन फ्रूट जिसे पिटाया भी कहा जाता है, जो कैक्टस परिवार से संबंधित है यह एक स्वादिष्ट और पोष्टिक फल है जो पश्चिमी राजस्थान में विपरित परिस्थितियों में आसानी से उगाया जाता है ड्रैगन फ्रूट मुख्य रूप से भारत, थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका और वियतनाम में लोकप्रिय है वर्तमान में इसकी खेती भारत में भी कई जगह होने लगी है भारत के पश्चिमी राजस्थान में आसानी से उगाया जाता है जिसकी मुख्य वहज इसकी अच्छी कीमत का मिलना और कम वर्षा वाले स्थान पर अच्छी पैदावार का होना है इसके फल का उपयोग आइसक्रीम, जैम, जेली एवं ब्यूटी क्रीम बनाने में किया जाता है।

ड्रेगन फ्रूट से होने वाले स्वास्थ्य लाभ

- ड्रेगन फ्रूट से मधुमेह को नियंत्रित करने में मदद मिलती है
- कोलेस्ट्रॉल को कम करने में सहायक है
- इस फ्रूट में वसा और प्रोटीन अधिक मात्रा में पाए जाते हैं
- इसे एंटीऑक्सीडेंट का उत्तम स्त्रोत माना जाता है
- अर्थराइटिस की बीमारी से बचाता है
- हृदय रोगियों के लिए उत्तम आहार
- वजन नियंत्रित करने में सहायक
- बुढ़ापे का असर कम करता है
- अस्थमा से लड़ने में मदद करता है
- विटामिन खनिज का उत्तम स्त्रोत

उपयुक्त जलवायु : यह मौसमी परिवर्तन यानि तापमान के उतार–चढ़ाव को आसानी से सहन कर सकते हैं इसके लिए 20 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है इसके पौधों को ज्यादा धूप वाली जगह पर नहीं लगाना चाहिए। इसकी खेती 50% वार्षिक औसत बरसात होने वाली जगह पर आसानी से की जा सकती है।

मिट्टी के प्रकार : वैसे तो इसकी खेती के लिए कोई विशेष प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है आप सभी तरह की कम उपजाऊ मिट्टी में भी इसे लगा सकते है लेकिन व्यावसायिक रूप से आप खेती करना चाहते हैं तो 5.4 मान से 7 चभ्मान वाली मिट्टी में इसे लगायें।

कैसे करें खेत की तैयारी : खेत की तैयारी के लिए पहले खेत को 2 या 3 बार गहरी जुताई कर लें ताकि उसमें सभी प्रकार के खरपतवार नष्ट हो जायें उसके बाद खेत में गोबर वाली खाद या वर्मी कम्पोस्ट खाद खेत की मिट्टी में मिलायें एवं उचित जल निकास की व्यवस्था रखें।

पौधे कैसे तैयार करें : इसके पौधे तैयार करने के लिए दो तरीके हैं एक बीज के द्वारा और दूसरा अन्य पौधे की शाखा (कलम) द्वारा बीज से पौधे तैयार करने में काफी ज्यादा समय लगता है इसलिए अधिकतर किसान शाखा (कलम) विधि का ही उपयोग करते हैं जो की व्यावसायिक खेती के लिए उत्तम होता है। शाखा के जरिये पौधे तैयार करने में स्वस्थ पौधे की छँटाई कर उसकी शाखाओं (कलम) को 20 सेमी लम्बे टुकड़े का उपयोग करना चाहिए अलग की गयी शाखाओं को रोपने से पहले छाँव में ही रखनी चाहिए।

पौधे लगाने का तरीका : इसके कलम पौधों को लगाने के लिए एक कतार में 2 मीटर की दूरी छोड़ कर 60 सेमी चौड़ा और 60 सेमी गहरा गड्ढा खोदा जाना चाहिए फिर कलम वाले पौधों को सूखे गोबर और बालू रेत को 1:1:2 के अनुपात में मिला कर गड्ढे में रोपे गड्ढों में मिट्टी के साथ प्रति गड्ढे में 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और कम्पोस्ट मिला कर भर दें। इस तरह एक एकड़ जमीन में 1700 पौधे लग जायेंगे ड्रैगन फ्रूट के पौधे काफी तेजी के साथ विकसित होते हैं उन्हें सहारा देने के लिए सीमेंट का पोल और तख्त लगाना चाहिए।

सिंचाई : अन्य फसल की तुलना में ड्रैगन फ्रूट को काफी कम पानी की आवश्यकता होती है रोपाई के तुरंत बाद पानी दें फिर एक सप्ताह उपरांत सिंचाई करें गर्मी के दिनों में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें ड्रैगन की सिंचाई के लिए ड्रिप सिंचाई बेस्ट रहती है।

खाद और उर्वरक : इसके पौधों के विकास में जीवाश्म तत्व मुख्य रूप से सहायक होते हैं। इसलिए प्रति पौधे 10 से 15 किलो तक को जैविक उर्वरक कम्पोस्ट देना चाहिए। जैविक खाद की मात्रा प्रति दो वर्ष में बढ़ाते रहना चाहिए पौधे के समुचित विकास के लिए समय–समय पर रासायनिक खाद भी देना चाहिये जिसमें पोटाश सुपर फास्फेट, यूरिया को 40:90:70 ग्राम प्रति पौधा देना चाहिए। जब पौधों में फल लगना शुरू हो जाये तब नाइट्रोजन की मात्रा कम करके पोटाश की मात्रा बड़ा देनी चाहिए जिससे अधिक उपज प्राप्त हो सके फूल आने से पहले और फल आने के समय प्रति पौधे में 50 ग्राम यूरिया 50 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 100 ग्राम पोटाश देना चाहिए प्रति वर्ष प्रति पौधे में 220 ग्राम रासायनिक खाद की मात्रा बड़ाई जानी चाहिए अधिकतम मात्रा 1.5 किलो तक हो सकती है।

उपज : इसके पौधे एक साल में ही फल देने के लायक हो जाते हैं मई–जून महिने में फूल लगते हैं और अगस्त से दिसम्बर तक फल आ जाते हैं। ड्रैगन फ्रूट एक सीजन में 3 से 4 बार देता है प्रति फल का वजन लगभग 300 से 800 ग्राम तक होता है प्रति एकड़ 5 से 6 टन होता है इसका बाजार में भाव प्रति किलो 200 से 250 तक रहता है।

सफेद मूसली उत्पादन की उन्नत तकनीक

राजेन्द्र गोचर एवं श्रवण कुमार यादव

कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, खानपुर, कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

सफेद मूसली एक लुप्तप्राय पौधा है जिसका व्यापक पारंपरिक इतिहास और औषधीय महत्व है। इसे आमतौर पर हिंदी में 'सफेद मुसली, अजरमुली, सतमुली' गुजरातीः उजलीमुसली, ढोली मुसली आदि के नाम से जाना जाता है (जिसका अर्थ है 'सफेद कंद')। सफेद मुसली एक व्यापक रूप से उगने वाली प्रजाति है और आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथिक और एलोपैथिक चिकित्सा प्रणालियों का अभिन्न अंग है, जहां पौधे की जड़ प्रमुख स्थान रखती है। परंपरागत रूप से, सफेद मुसली को एक सामान्य स्वास्थ्यवर्धक टॉनिक माना जाता है और इसका उपयोग पुरुषों के विभिन्न यौन विकारों के उपचार के लिए किया जाता रहा है। भारत के विभिन्न जन–जातीय समुदायों ने सफेद मूसली को अपनी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में शामिल करके स्वास्थ्य, ऊर्जा और दीर्घायु का लाभ उठाया है। इसकी जड़ों में कामोत्तेजक,वातहर, ज्वरनाशक, मूत्रवर्धक और प्रतिरक्षा–नियंत्रक गुणों के कारण, अब व्यावसायिक रूप से अधिक उपयोग की जाने वाली औषधीय प्रजाति/फसल हो गयी है, और हाल ही में, 'वियाग्रा' के हर्बल विकल्प के रूप में इसकी नई पहचान ने पश्चिमी देशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ा दी है। इनका उपयोग दूध बढ़ाने और भूख बढ़ाने के लिए किया जाता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर इसके कंदों का प्रभाव जिनसेंग के समान है और इसके चमत्कारी औषधीय गुणों के कारण इसे 'भारतीय जिनसेंग' के रूप में जाना जाता है। आजकल, अमेरिका और इंग्लैंड में इसके कंदों से चिप्स/फ्लेक्स बनाकर पौष्टिक भोजन के रूप में उपयोग किया जा रहा है। हाल ही में, भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय औषधि बाजारों में इस पौधे की मांग में जबरदस्त वृद्धि हुई है, और यह सौ से अधिक हर्बल औषधियों का एक महत्वपूर्ण घटक है। बढ़ती मांग को पूरा करने और इस जंगली पौधे के प्राकृतिक आवास से अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिए, भारत के कुछ हिस्सों मे व्यावसायिक खेती को सफलतापूर्वक शुरू किया गया है। सफेद मूसली के प्रमुख घटक कार्बोहाइड्रेट (41%), प्रोटीन (8-9%), सैपोनिन (2.17%) और जड़ फाइबर (4%) हैं। सैपोनिन जड़ों में पाया जाने वाला प्रमुख औषधीय यौगिक है, जो कामोद्दीपक, एंटीऑक्सीडेंट, कैंसर–रोधी गतिविधियों और रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है।

पुष्पीय पौधा

जड़युक्त पौधा

सुखी जड़े

सफेद मूसली *(Chlorophytum borivilianum)* एस्पारागेसी कुल का एक औषधीय पौधा है। इसमें 6–16 मूलांकुर होते हैं। इसके पत्ते 13–23 सेमी लंबे और 1–2.5 सेमी चौड़े, बिना डंठल के, रैखिक–अंडाकार आकार के होते हैं और आधार पर सर्पिल रूप में व्यवस्थित रहते हैं। इसके फूल छोटे, सफेद और सहपत्रयुक्त होते हैं, जो जोड़ों में तथा एकांतर गुच्छों में लगे होते हैं। पौधे में 3–20 गूदेदार जड़ें होती हैं, जिनकी लंबाई 8–25 सेमी तक होती है। जड़ों की बाहरी त्वचा भूरी से काली होती है, जबकि अंदर से सफेद, हल्की गंध वाली और

लगभग स्वादहीन होती हैं। इसका फल हरे–पीले रंग का त्रिकोणीय कैप्सूल होता है, जिसमें 3–12 छोटे, काले और कोणीय आकार के बीज पाए जाते हैं। उत्पत्ति और वितरणभारत में सफेद मूसली की खेती छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश सहित कई राज्यों में की जाती है। इसकी कंदयुक्त जड़ों के लिए इसे आमतौर पर 500 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में उगाया जाता है। रोपण के 80–90 दिनों बाद पौधे सक्रिय वृद्धि अवस्था में आ जाते हैं या परिपक्व हो जाते हैं, और 40 दिनों के बाद नई मांसल जड़ें विकसित होने लगती हैं। कटाई आमतौर पर मार्च–अप्रैल के महीने में की जाती है। कटाई की गई फसल के लंबे और मोटे कंदों को (50-70%) अक्टूबर–नवंबर के दौरान डिस्क से निकाल लिया जाता है, शेष छोटे और पतले कंदों (उंगलियों) को डिस्क के साथ अगले फसल मौसम में रोपण के लिए संग्रहित किया जाता है। उच्च गुणवता, उपज, इष्टतम वृद्धि और विकास के लिए सफेद मुसली, जलवायु और मिट्टी की स्थिति, प्रवर्धन, रोपण विधियाँ, पोषक तत्व प्रबंधन, खरपतवार और कीट नियंत्रण के साथ–साथ अंतफसलें बेहतर उपज प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जलवायु और मिट्टी सफेद मुसली के इष्टतम कंदों के विकास के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में 50–150 सेमी वार्षिक वर्षा (जुलाई–अक्टूबर) होती है, वे इसकी खेती के लिए उपयुक्त माने जाते हैं (खरीफ फसल) के लिए अत्यधिक तापमान 35° सेल्सियस, इसके विकास के लिए अनुकूल नहीं होते हैं, जबकि उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त बलुई दोमट मिट्टी मांसल कंदों के विकास में सहायक होती है। सफेद मूसली के लिए मिट्टी का पीएच मान 5.0–8.0 इष्टतम होता है। 8 से अधिक पीएच मान सफेद मुसली के वृहद और सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को काफी हद तक प्रभावित करता है। प्रवर्धन प्राकृतिक आवास से एकत्रित बीजों में 11-24% अंकुरण दर पाई गई। प्रत्येक अंकुर से रोपण सामग्री की केवल एक इकाई प्राप्त होती है और कंदों की तुलना में इनमें अंकुरण और स्थापना दर अपेक्षाकृत अधिक (95-100%) होती है। सफेद मूसली का वानस्पतिक प्रवर्धन पिछले वर्ष की उपज से प्राप्त डिस्क को विभाजित करके किया जाता है। प्रत्येक डिस्क या अंकुर में 1–3 गूदेदार कंद होते हैं और इनका वजन

किस्म का नाम	विकसित करने वाली संस्था	औसत उपज (क्विं./हे., सुखी जड़)	अवधि (दिन)	प्रमुख विशेषताएँ	उपयुक्त क्षेत्र
CIM मूसली	केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान–लखनऊ	20–25 क्विं. / है.	90–100 दिन	समान आकार की जड़े, अधिक उत्पादन	पूरे भारत (सिंचित क्षेत्र)
JSM-20 (जवाहर सफेद मूसली–20)	जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर	18–20 क्विं. / है.	85–95 दिन	शीघ्र परिपक्व, अधिक जड़ संख्या	मध्य भारत
RGSM-1	राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, जपयुर	15–20 क्विं. / है.	90–100 दिन	सूखा सहनशील, स्थिर उत्पादन	राजस्थान एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्र
AM-1 आनन्द मूसली–1)	आनन्द कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द	20–24 क्विं. / है.	90–105 दिन	मोटी जड़ें, अधिक सैपोनिन मात्रा	गुजरात एवं समान जलवायु

लगभग 5 ग्राम होता है, चूंकि कंदों का उपयोग करके खेती करना महंगा और श्रमसाध्य है, इसलिए पादप वृद्धि नियामकों (इंडोल ब्यूटिरिक एसिड, काइनेटिन और 24–एपाइब्रासिनोलाइड) के विभिन्न उपचारों द्वारा सफेद मूसली के बीजों के अंकुरण प्रतिशत पर सकारात्मक प्रभाव होता है। रोपणसफेद मुसली की रोपाई बारिश शुरू होने से ठीक पहले या बाद में की जाती है और रोपाई का इष्टतम समय स्थान–स्थान पर भिन्न होता है। यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार की क्यारियां (समतल, मेड़ और नाली, दोहरी पंक्ति वाली उठी हुई क्यारी और तिहरी पंक्ति वाली उठी हुई क्यारी) और पौधों के बीच की दूरी, मिट्टी की बनावट और वर्षा की मात्रा के आधार पर, सफेद मूसली की उपज में प्रभावी रूप से योगदान करती हैं। गर्म अर्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र में अधिकतम ताजी जड़ उपज के लिए 30 सेमी x10–15 सेमी की दूरी पर 3,33,000 पौधे प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई दर्ज की गई। रोपण सामग्री का इष्टतम वजन 1 ग्राम (350–450 किलोग्राम कंद/हेक्टेयर) बताया गया है।

पोषक तत्व प्रबंधन : सफेद मूसली एक कंदीय औषधीय फसल है, जिसके बेहतर उत्पादन एवं वृद्धि के लिए, खेत की तैयारी के समय प्रति हेक्टेयर लगभग 15–20 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए, जो पोषक तत्वों की आवश्यकता, मिट्टी की उर्वरता एवं संरचना को सुधारेगे। रासायनिक उर्वरकों के रूप में सामान्यतः 40–60 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस एवं 40 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की अनुशंसा की जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा रोपाई के समय तथा शेष मात्रा 30–40 दिन बाद देना लाभकारी रहता है। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक एवं आयरन का 0.5% छिड़काव पौधों की वृद्धि एवं कंद विकास को बढ़ावा देता है। जैव उर्वरक जैसे एजोटोबैक्टर एवं फॉस्फेट सोल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया (PSB) 5 किग्रा/हे. मिट्टी में मिलाकर प्रयोग भी उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है। जीवामृत/पंचगव्य का 2–3 बार 15–20 दिन के अंतराल पर छिड़काव जड़ वृद्धि, कंद विकास एवं सैपोनिन कंटेंट में वृद्धि करता है।

अंतरफसल खेती : सफेद मूसली की विभिन्न अंतरफसल फसलों में अरहर, लोबिया, लबलब, मक्का, उड़द, लौकी, भिंडी, मीठी तुलसी, पवित्र तुलसी और सरसों शामिल हैं। सफेद मूसली के साथ अरहर और लौकी की अंतरफसल खेती कुल उपज के लिहाज से सबसे अधिक लाभदायक है।

रोग और कीट : सफेद मूसली आमतौर पर पत्ती धब्बे, पत्ती झुलसा रोग, कॉलर सड़न, कंद सड़न और रतुआ रोग से प्रभावित होता है। प्रोपिकोनाजोल (0.1%), ट्राइडेमॉर्फ (0.1%), जिनेब–हेक्साकोनाजोल (0.2%), डाइथेन एम–45 (0.25%) के प्रयोग से कोलेटोट्राइकम डेमाटियम और अल्टरनेरिया अल्टरनेर्ट के उच्च अवरोध को कम किया जा सकता है।

कटाई ओर पैदावार : फसल लगाने के लगभग तीन महीने बाद पक जाती है। पकने पर, पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और अंततः तने के निचले हिस्से (कॉलर) से सूखकर गिर जाती हैं। इसलिए, फसल की कटाई तब की जानी चाहिए जब पत्तियाँ सूख चुकी होंय ऐसा आमतौर पर सितंबर–अक्टूबर के महीनों में होता है। औसतन, प्रति हेक्टेयर 50–80 क्विं./हे. गूदेदार जड़ें मिल सकती हैं, जिनसे लगभग 15–20क्विं./हे. सूखी सफेद मूसली तैयार हो जाती है।

कंद की सफाई एवं छिलका उतारना : जब कंद को जमीन से खोदकर निकाला जाता है, तो जाहिर है उसमें बहुत सारी मिट्टी लगी होती है। इसलिए, कंद का छिलका उतारने से पहले उसे अच्छी तरह से साफ करना जरूरी होता है। दोबारा बोने के लिए अलग किए गए कंदों को छोड़कर, सिर्फ उन्हीं कंदों का छिलका उतारा जाना चाहिए जिनमें ऊपरी हिस्सा (क्राउन) न हो।, छिलका उतारने से कंद आसानी से सूख जाता है। बिना किसी नुकसान (गुणवत्ता या मात्रा में) के, चाकू की मदद से एक व्यक्ति/दिन में 5.0 किग्रा तक कंदों का छिलका उतार सकता है।

सुखाना ओर पैकिंग : छिलका उतारने के बाद, मूसली में मौजूद नमी को सुखा देना चाहिए। मूसली को पूरी तरह (<10 % नमी) से सूखने में 7 दिन का समय लगता है। सूखने के बाद, मूसली को पॉली बैग में पैक करना जरूरी है, ताकि उसमें नमी न जा सके।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन-समय की मांग

के. एम. शर्मा एवं राजेद्र कुमार यादव
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। मृदा सिर्फ एक निष्क्रिय पदार्थ नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत प्रणाली है जो पौधों, सूक्ष्मजीवों, पशुओं और मानव जीवन का आधार है। वैज्ञानिक नजरिए से, मृदा स्वास्थ्य का तात्पर्य है मृदा की वह क्षमता जो पौधों के विकास, पोषक तत्वों की आपूर्ति, जल को धारण करने, जैव विविधता की रक्षा और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है। स्वस्थ मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के अनुकूल रहती है।

अत्यधिक कृषि रसायनों का उपयोग, जैविक खादों के कम प्रयोग, एक ही फसल को बार–बार उगाना, मिट्टी की बार–बार जुताई करना एवं अकुशल जल प्रबंधन आदि से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशायें फसल उत्पादन के लिए प्रतिकूल होती जा रही है। वर्तमान जनसंख्या की खाद्य व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति होने के साथ–साथ भविष्य की आवश्यकता को ध्यान रखते हुऐं मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन करना आवश्यक हो गया है। मृदा उत्पादकता स्तर बढ़ाया जाये एवं मृदा व वातावरण को प्रदूषणमुक्त रखा जावें।

मृदा और फसल की स्थिति का पर्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ मृदा जल धारण क्षमता बढ़ाती है, कार्बन का संचयन करती है तथा जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में सहायक होती है। इसके विपरीत, खराब मृदा संरचना जल चक्र को बाधित कर सूखा एवं बाढ़ जैसी समस्याओं को बढ़ा सकती है। इसी प्रकार विविध फसल प्रणाली और दलहनी फसलों के समावेश से मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता और जैविक पदार्थ में वृद्धि होती है, जिससे पर्यावरणीय संतुलन मजबूत होता है। मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, फसल चक्र, जैविक खादों का उपयोग, संरक्षण कृषि तथा जल प्रबंधन जैसे उपायों को अपनाना आवश्यक है। यह न केवल फसल उत्पादन को बढ़ाता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जलवायु स्थिरता तथा दीर्घकालिक कृषि स्थिरता के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मृदा स्वास्थ्य परीक्षण करवायें : मृदा स्वास्थ्य जानने के लिए अपने खेत की मिट्टी के नमूनें का प्रयोगशाला में परीक्षा करवायें। मिट्टी परीक्षण से हमें निम्नलिखित जानकारी मिलती है।

- मृदा में उपलब्ध पौषक तत्वों जैसे नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, सल्फर, एवं अन्य सुक्ष्म पौषक तत्वों की स्थिति, जिससे फसलों में आवश्यक तत्व संतुलित मात्रा में दिये जा सके।
- मृदा में पी.एच.मान, जो मृदा के क्षारीयता/लवणीयता व फसलों को मृदा से जल व पौषक तत्व अधिग्रहण को प्रमुख तौर पर प्रभावित करने वाला गुण है।
- कार्बनिक पदार्थो की मात्रा, जो मृदा की जलधारण क्षमता, मृदा उर्वरता, मृदा ताप, लाभदायक जीवाणुओं की सक्रियता को प्रभावित करने वाला प्रमुख गुण है।
- विद्युत चालकता, जिससे मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा का ज्ञान होता है।
- मृदा सुधारकों जैसे जिप्सम की मात्रा का ज्ञान।
- मृदा की भौतिक संरचना व मृदा की किस्म की जानकारी।

मृदा के नमूने लेने की सही विधि : मृदा परीक्षण सही व सार्थक हो, इसके लिए यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि नमूना सही ढंग से लेना। इसके लिए सर्वप्रथम पूरे खेत को ढलान, रंग, आकार के अनुसार कई भागों में इस तरह बांट लेना चाहिए कि प्रत्येक भाग अपने–आप में अधिकतम समान हो। जब पूरा खेत लगभग एक समान हो तो इस पूरे खेत से एक ही नमूना तैयार करने के लिए 10–12 जगहों से नमूना एकत्र करना चाहिए। यदि पूरे खेत में अलग–अलग तरह के क्षेत्र हो तो उन क्षेत्रों का अलग–अलग नमूना तैयार करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र के 8–10 स्थानों से एक नमूना तैयार करें जिससे प्रत्येक क्षेत्र का अलग–अलग परीक्षण करवा सकें।

नमूना एकत्र करने के लिए चयनित स्थानों से सबसे पहले घांस–फूंस इत्यादि हटाकर साफ करें। नमूना सामान्यतः 15 सेमी. गहराई से लेते है। नमूना लेने के लिए खुरपी, फावडा, आंगर आदि का प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले 'V' आकार का 15 सेमी गहराई का गड्डा बनाते हैं, इस आकार को बनाने में एकत्र हुई मिट्टी को बाहर निकाल दें। इसके बाद श्टश आकार के गड्डे के दोनो तरफ से 1–2 इंच परत खुरपी की सहायता से खुरचें। खुरची हुई मिट्टी को प्लास्टिक की थैली में या बाल्टी में एकत्र कर लें। इस तरह खेत के 8–10 स्थानों से नमूना एकत्र कर लें। सभी स्थानों से एकत्र नमूनों को साफ स्थान पर रखकर आपस में मिला दें। तत्पश्चात् ढेर को फैलाकर चार भागों में बाँटकर आमने–सामने के दो भागों को हटा दें तथा शेष दो भागों को पुनः मिलाकर चार भागों में बांटें और आमने–सामने के दो भागों को हटा दें। इस प्रकार पूरी मात्रा को घटाते हुए अन्त में लगभग आधा किलोग्राम मात्रा किसी साफ कपड़े या पोलीथीन की थैली में रखें। इस पर किसान का नाम व पता, नमूने की पहचान संख्या आदि लिखकर एक लैबल धागे की सहायता से लगा दें। ऐसा ही एक लेबल थैली के अन्दर भी रखें।

- लवणीय–क्षारीय मृदाओं के लिए मिट्टी का नमूना 0 से 15 सेमी, 15 से 30 सेमी, 30 से 60 सेमी आदि विभिन्न गहराई के अलग–अलग नमूना एकत्र करते है। जबकि फल वृक्षों के लिए 0–1, 1–2 व 2 से 3 फीट गहराई के अलग–अलग नमूने लेतें हैं।

नमूना लेते समय ध्यान रखें :–

- नमूना ऐसे स्थान से न लें जहाँ खाद व उर्वरक बिखेरे गये हो।
- वर्षा के बाद व उर्वरक प्रयोग के तुरन्त बाद नमूना न लें।
- नमूना हमेंशा साफ–सुथरे कपड़े या प्लास्टिक की थैली में ही लें।
- नमूना किसी भी दशा में दवा, उर्वरक, खाद बैटरी आदि के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए।
- सूक्ष्म तत्वों के परीक्षण हेतु नमूना लेने के लिए प्लास्टिक अथवा लकड़ी की पट्टी की सहायता से लें ताकि नमूना धातु के सम्पर्क में नहीं आये। जंग लगी खुर्पी या कुदाली का प्रयोग नहीं करें।

मृदा का उचित पी.एच.मान बनाए रखना मृदा का पी.एच.मान पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करता है, क्योंकि यह मिट्टी में पोषक तत्वों के रूप को बदल देता है। मृदा पी.एच.मान को अनुशंसित मान पर समायोजित करने से महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ सकती है। पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए 6.5 का पी.एच.मान आमतौर पर इष्टतम माना जाता है। कम पी.एच.मान से एल्युमिनियम, मैंगनीज और आयरन की घुलनशीलता बढ़ जाती है, जो अधिक मात्रा में पौधों के लिए विषैले होते हैं। अत्यधिक पी.एच.मान अधिकांश पोषक तत्वों की उपलब्धता को कम कर देते हैं। कम पी.एच.मान से वृहद और द्वितीयक पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है, जबकि उच्च पी.एच.मान से अधिकांश सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। चूना (कैल्शियम कार्बोनेट) मिलाकर मिट्टी को कम अम्लीय बनाया जा सकता है, या सल्फर, या अन्य मृदा सुधारक मिलाकर इसे अधिक अम्लीय बनाया जा सकता है।

मृदा में उपलब्ध मुख्य पोषक तत्वों की व्याख्या

पोषक तत्व	निम्न	मध्यम	उच्च
जैविक कार्बन (प्रतिशत)	0.50 से कम	0.50 से 0.75	0.75 से 1.0
उपलब्ध नत्रजन (किग्रा./हेक्टेयर)	280 से कम	280 से 560	560 से 700
उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा./हेक्टेयर)	10 से कम	10 से 25	25 से 30
उपलब्ध पोटाश (किग्रा./हेक्टेयर)	120 से कम	120 से 280	280 से 340

मृदा में प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्वों की सामान्य क्रांतिक मात्रा

पोषक तत्व	क्रांतिक मात्रा (पीपीएम)
जिंक	<0.5 - 0.6
आयरन	<4.5- 5
मैंगनीज	<2-2.5
कॉपर	<0.2
बोरोन	<0.5

मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन

मृदा में जैविक कार्बन की उपलब्धता बनाये: मृदा में जैविक पदार्थ मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मृदा में लाभदायी सूक्ष्म जीवाणुओं की उपलब्धता एवं सक्रियता के लिये मृदाओं में जैविक कार्बन की मात्रा 0.5 प्रतिशत से कम नही होना चाहिये। मृदा में जैविक कार्बन के रखरखाव में अच्छी गुणवत्तायुक्त गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट जैविक खादों का प्रयोग, हरी खाद का उपयोग, फसल अवशेष प्रबंधन और फसलचक्र में दलहनी फसलों को शामिल करना आदि शामिल हैं। कम्पोस्ट, गोबर की खाद, सुपर कम्पोस्ट, नेडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट आदि स्वयं किसानों को बनाकर यथासम्भव कम से कम तीन वर्ष में एक–दो बार प्रयोग किया जाना चाहिए। जीवांश पदार्थ मृदा की भौतिक दशा सुधारने में सहायक होते हैं। मृदा की दानेदार संरचना, अच्छी जलधारण क्षमता, पौषक तत्वों का संतुलन आदि महत्वपूर्ण मृदा स्वास्थ्य के मापदण्डों के लिए मृदा में जीवांश पदार्थो की मात्रा बनाये रखना आवश्यक है।

हरी खाद वाली फसलों का फसल चक्र में यथासम्भव समावेश करें। जैसे ढ़ेचा, सनई, ग्वार आदि। परती की जगह हरी खाद की फसल करें। सिंचाई सुविधा होने पर मानसून आने के 15 से 20 दिन पूर्व एवं असिंचित अवस्था में मानसून आने के तुरन्त बाद खेत अच्छी तरह से तैयार कर हरी खाद की फसलों की बोनी की जा सकती है।

उर्वरकों का सन्तुलित प्रयोग: उर्वरकों के अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग से मृदा के पोषक तत्व भण्डार का लगातार दोहन हो रहा है। जहाँ पहले मृदा में केवल नत्रजन तत्व की कमी थी, अन्य पोषक तत्वों का प्रयोग न करने के कारण मृदा में क्रमशः फॉस्फोरस, पोटाश, जिंक, सल्फर, लौहा, मैंगनीज व बोरोन तत्वों की कमी भी होती जा रही है। फसलों की लगातार अच्छी पैदावार लेने एवं मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम फसल द्वारा मृदा से अवशोषित पोषक तत्वों का पुर्नभरण उर्वरकों व जीवान्त खादों के माध्यम से आवश्यकतानुसार करते रहें। फसलों द्वारा मृदा से पोषक तत्वों के निष्कासन की भरपाई मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए उनके प्रयोग द्वारा की जानी चाहिए। बेहतर उर्वरता प्रबंधन के लिए, हमेशा यह विचार करना चाहिए कि किसी विशेष फसल के लिए किन तत्वों की आवश्यकता है और कितनी मात्रा में, और कुल आवश्यकताओं में से मृदा में कितनी मात्रा मौजूद है।

समन्वित पौषक तत्व प्रबन्धन: रासायनिक उर्वरकों के साथ जीवांश खादें, जैसे गोबर की अच्छी पकी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खादें जैसे सनई, ढेंचा, ग्वार, मूंग आदि का समावेश कर करने से न केवल उत्पादकता वृद्धि होती है वरन् दिये गये उर्वरकों का समुचित प्रयोग के साथ–साथ टिकाऊ खेती का आधार मृदा स्वास्थ्य भी बना रहता है। अतः रासायनिक खादों के साथ–साथ जीवांश खादों का भी यथासंभव प्रयोग करने की आवश्यकता हैं।

जैविक खाद: जैविक खाद न केवल पौषक तत्वों की पूर्ति करती है अपितु मृदा की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणवत्ता को भी बढ़ाती है। भारत में गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, बायोगैस स्लरी, खालियां, मुर्गी, भेड़ अथवा बकरी से प्राप्त खाद मुख्य

रूप से प्रयोग में आने वाले जैविक खाद के स्त्रोत है। खेत में हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहनी फसलें उगाकर मृदा की उर्वरता में सुधार किया जा सकता है। हरी खाद की फसलें में ढ़ैचा, सन, लोबिया तथा दूसरी दलहनी फसलें मुख्य हैं।

जैव–उर्वरकों का प्रयोग: जैव–उर्वरक जो बायोफर्टिलाइजर या जीवाणु कल्चर के नाम से जाने जाते हैं, कम लागत के कृषि आदान है। रासायनिक उर्वरकों के निरन्तर असंतुलित उपयोग से मृदा के लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु, मृदा स्वास्थ्य एवं कृषि उत्पादों की गुणवत्ता व उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक राइजोबियम कल्चर, एजोटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम, एजौला, नील हरित शैवाल (बी.जी.एल्गी) एवं एसिटोबेक्टर आदि एवं फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ाने वाले जैव–उर्वरक फॉस्फोरस विलायक जीवाणु (पी.एस.बी. कल्चर), माइकोराइजा आदि का प्रयोग द्वारा रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम की जा सकती है।

फसल अवशेष प्रबन्धन : धान की कटाई और गेहूँ की बुआई के बीच की सीमित समय सीमा ओर शीघ्रातिशीघ्र बुआई करने की विवशता किसानों को पर्यावरण के लिये हानिकारक होते हुए भी पराली जलाने जैसे त्वरित समाधान चुनने के लिये प्रेरित करती है। फसल अवशेषों को अपशिष्ट मानकर त्वरित निपटान के लिये जला देना आम बात हो गई है। फसल अवशेषों को जलाने से वायुमंडल में बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जो ग्लोबल वार्मिंग में योगदान करते हैं। इससे खेतों से पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्त्वों एवं जैविक कार्बन की की हानि होती है। फसल अवशेषों को जलाकर बर्बाद करने के बजाय इनका कुशलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। मृदा के जैविक पोषक तत्त्वों की पुनर्स्थापना के लिये फसल अवशेषों के कुशल ऑन–फार्म प्रबंधन और इसे चारे, छप्पर निर्माण, मल्चिंग, जैविक खाद आदि के लिये उपयोग करने के रूप में ऑफ–फार्म प्रबंधन की आवश्कता है। फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर उनके अपघटन के लिए प्रबन्ध करें। आर्गेनिक डीकम्पोजर के उपयोग से फसल अवशेषों को शीघ्रता से सड़ाकर खाद तैयार की जा सकती है।

समस्याग्रस्त मृदा में सुधार: मृदा पीएच व विद्युत चालकता के आधार पर मृदा अम्लीय, क्षारीय व लवणीय समस्या की जानकारी होती है। मृदा यदि लवणीय, क्षारीय या अम्लीय है तो उनमें सुधार करना आवश्यक है। अम्लीय मृदा की समस्या मुख्यतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में होती है जबकि क्षारीय एवं लवणीय मृदा की समस्या प्रायः शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

अम्लीय मृदा की समस्या सुधार हेतु प्रयोगशाला परीक्षण के आधार पर चूने का प्रयोग किया जाता है। मृदा परीक्षण के आधार पर आवश्यक चूने को सही प्रकार से पीस कर मृदा की ऊपरी सतह में बिखेर कर मिला देना चाहिए।

लवणीय मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक होती है, जिसके कारण बीज के अंकुरण और वृद्धि पर बुरा प्रभाव होता है। लवणीय मृदा सुधार हेतु घुलनशील लवणों की मात्रा को निक्षालन या धुलाई की क्रिया द्वारा कम किया जा सकता है। परन्तु मुख्य समस्या यह है कि ऐसे क्षेत्रों में सिंचाई जल भी प्रायः लवणीय ही होता है, जबकि लवण धुलाई के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले जल की आवश्यकता होती है। लवणीय मृदा सुधारने के लिए भूमि को समतल करें, मेड़बन्दी करके छोटी–छोटी क्यारियां बनाकर वर्शा या सिंचाई जल भरकर रखें जिससे घुलनशील लवणों का निक्षालन हो। भूमि की सतह पर एकत्रित लवणों की परत को खुरच कर हटायें। इसके साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता वाले जैविक खादों का प्रयाग करना चाहिए। लवणीयता अवरोधी फसलों के चुनाव तथा लवणीय जल का उचित विधि से प्रयोग करके भी इस समस्या का आंशिक समाधान किया जा सकता है।

क्षारीय मृदा में विनिमेय सोडियम 5 प्रतिशत से अधिक पाया जाता है और पी एच 8.5 से 10 तक होता है। विनमयशील सोडियम की अधिकता मिट्टी की भौतिक दशा को खराब कर देती है, जिससे पानी और हवा का संचार रुक जाता है और फसल की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। क्षारीय मृदा के सुधार हेतु प्रयोगशाला में जिप्सम की आवश्यकता परीक्षण के आधार पर जिप्सम की मात्रा उपयोग वर्षा या सिंचाई से पूर्व अच्छा प्रकार से मृदा में मिलाकर किया जाता है। मृदा परीक्षण परिणामों के अनुसार जिप्सम, केल्साइट, सल्फर इत्यादि का प्रयोग करें। जिप्सम की मात्रा का अनुमान मृदा के पी.एच के मान के आधार पर भी किया जाता है। सामान्यतः पी.एच.(1:2) के 1 यूनिट को कम करने के लिए एक टन जिप्सम (70% सुदृढ़ता) की आवश्यकता होती है। मई के महीने में खेत को समतल करके मेड़बन्दी करें, ताकि खेत में पानी सब जगह बराबर लग सके। जिप्सम की सिफारिश की गई मात्रा जून के प्रथम सप्ताह में मानसून आने से पूर्व खेत में बिखेर दें। इसके बाद हल्की जुताई कर दें जिससे सतह पर बिखरी हुई जिप्सम मिट्टी की ऊपरी सतह से 10 से 15 सेमी भूमि में मिल जाय। हरी खाद वाली फसल ढेंचा क्षारीय भूमि सुधारने में सहायक सिद्ध हुई है।

फसल चक्र अपनाना: फसल चक्र किसानों द्वारा प्रयोग मे लाई जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जिससे मृदा मे उपस्थित पोशक तत्वों का पूर्णरूप से उपयोग किया जा सकता है । यदि एक ही फसल को बार–बार एक ही खेत से लिया जाता है तो उस खेत की मृदा में कुछ प्रमुख पोषक तत्वों की कमी हो जाती है । ये वह पोषक तत्व है जिनकी आवश्यकता उस फसल को सर्वाद्यिक होती है। अतः पोषक तत्वों की कमी को रोकने हेतु उचित फसल चक्र ही उपयुक्त है । सधन कृषि प्रणाली में जैविक खादों, संतुलित उर्वरकों व जैव उर्वरकों के प्रयोग के साथ–साथ सही फसल चक्र को अपनाना नितान्त आवश्यक है। खाद्यान्नों के चक्र के बीच में दलहन की फसल उगाने से खेत की उर्वरा शक्ति काफी अच्छी रहती है तथा सभी फसलों का उत्पादन स्तर काफी टिकाऊ होता है।

मृदा संरक्षण के उपाय करें: भूमि की उपरी सतह की मृदा सर्वाधिक उपजाऊ होती है। अतः जल व वायु द्वारा भूमि का क्षरण अधिक होने से पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी आती है। अतः जल व वायु द्वारा भू क्षरण के उपाय करना आवश्यक है। मेड़बन्दी करके खेत में वर्षा का पानी रूकना चाहिए। ढ़लान के विपरीत जुताई एवं बुवाई करना चाहिए। मृदा को ढ़कान देने वाली फसलें जैसे मूंग आदि का समावेश कर पट्टीदार खेती भू–क्षरण वाले क्षेत्रों में की जानी चाहिए। आवश्यकता से अधिक भूपरिष्करण कार्य जैसे जुताई आदि करने से मृदा की संरचना पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, अतः भूमि की कम से कम जुताई करना चाहिए। गर्मियों में खेतों की जुताई करने से मिट्टी में मौजूद कई हानिकारक कीट, रोगजनक और खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं।

फसल अवशेष प्रबंधन: आज की आवश्यकता

आर. एस. नारोलिया, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सोनल शर्मा
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

विगत साठ वर्षो से भारतीय कृषि मुख्यत: फसल उत्पादन बढ़ाने पर केंद्रित रही है और कटाई के बाद फसलों के प्रबंधन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादों के लिये प्रभावी मूल्य शृंखलाओं का विकास सीमित हो गया है जबकि उप–उत्पादों और फसल अवशेषों के लिये मूल्य शृंखलाओं का लगभग कोई विकास नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त, एक फसल वर्ष में अधिक फसल पैदा करने की बढ़ती मांग के कारण फसल अवशेषों को अपशिष्ट मानकर त्वरित निपटान के लिये जला देना आम बात हो गई है जिसके कारण पराली दहन वर्तमान नीतिगत चर्चाओं में एक महत्त्वपूर्ण एवं दबावपूर्ण मामला बन गया है। फसल अवशेष जलाने से न केवल मूल्यवान बायोमास का नुकसान होता है बल्कि यह ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और प्रदूषण की वृद्धि में भी उल्लेखनीय योगदान देता है। जुलाई 2023 में नीति आयोग द्वारा प्रकाशित एक वर्किंग पेपर के अनुसार, भारत प्रति वर्ष औसतन लगभग 650 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पन्न करता है। चम्बल सिंचित क्षेत्रों की विभिन्न फसल प्रणालियों मे गेहूं–सोयाबीन व गेहूं–धान फसल प्रणाली का महत्वपूर्ण स्थान है। यह फसल प्रणाली मुख्यतया हाड़ौती क्षेत्र मे ज्यादा अपनाई जाती है। इस फसल प्रणाली मे किसान गेहूं की फसल को अप्रेल माह में कम्बाइन मशीन से कटाई करने के बाद जून माह में अवशेषो को आग लगाकर जला देते है जिससें जमीन की उपरी परत में स्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या कम हो जाने के कारण उर्वरकता शक्ति मे गिरावट आ जाती है। इसके अलावा जमीन में लगातार अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग करने एवं अवशेषो पर आग लगाने से मृदा मे कार्बनिक प्रदार्थो की कमी के कारण फसलोत्पादन में कमी आती जा रही है। गेहूं–सोयाबीन फसल प्रणाली मे अवशेषो की गणना करें तो लगभग 500–600 ग्राम प्रति वर्ग मीटर गेहूं के अवशेष एवं 160–240 ग्राम प्रति वर्ग मीटर सोयाबीन के अवशेषो मे आग लगा दी जाती है इन अवशेषो में आग न लगा कर इनका उचित प्रबन्धन करके मृदा में इनकों सड़ाया–गलाया जा सकता है।

फसल अवशेष दहन के पीछे प्राथमिक कारण

- **धान की कटाई और गेहूँ की बुआई के बीच संक्षिप्त समय अंतराल:** धान की कटाई और गेहूँ की बुआई के बीच की सीमित समय सीमा किसानों को फसल अवशेष निपटान के वैकल्पिक तरीकों की खोज से अवरुद्ध करती है। शीघ्रातिशीघ्र बुआई करने की विवशता उन्हें पर्यावरण के लिये हानिकारक होते हुए भी पराली दहन जैसे त्वरित समाधान चुनने के लिये प्रेरित कर सकती है।

- **कंबाइन हार्वेस्टर का बढ़ता उपयोग:** कंबाइन हार्वेस्टर का व्यापक प्रयोग पराली प्रबंधन (stubble management) की चुनौती में योगदान करता है। ये मशीनें बड़ी मात्रा में पराली छोड़ती हैं, जिसे मैन्युअल या यंत्रवत तरीके से हटाना कठिन साबित होता है। यह बचा हुआ अवशेष किसानों को त्वरित समाधान के रूप में इनके दहन के लिये प्रोत्साहित करता है।

- **फसल अवशेष प्रबंधन के लिये पर्याप्त विकल्पों का अभाव:** कम्पोस्टिंग, मल्चिंग, निगमन (incorporation) या जैव ऊर्जा में रूपांतरण जैसे किफायती और व्यवहार्य विकल्पों की अनुपस्थिति समस्या को और बढ़ा देती है। सुलभ विकल्पों के अभाव में किसान पराली को जलाने के रूप में एक सुविधाजनक प्रतीत होने वाली विधि का सहारा लेने के लिये विवश हो सकते हैं।

- **चावल के भूसे की पोषण संबंधी अपर्याप्तता और इसका स्वादिष्ट नहीं होना:** चावल के भूसे की पोषण संबंधी अपर्याप्तता और इसका स्वादिष्ट नहीं होना, इसे पशु आहार के लिये अनुपयुक्त विकल्प बनाता है। यह सीमा फसल अवशेषों के लाभकारी उपयोग के अवसरों को कम कर देती है और संबंधित पर्यावरणीय दुष्परिणामों के बावजूद किसानों को पराली दहन जैसा उपाय चुनना पड़ता है।

- **आर्थिक और सामाजिक कारक:** विभिन्न आर्थिक और सामाजिक कारक फसल अवशेष जलाने की व्यापकता में योगदान करते हैं। श्रम की कमी, संसाधन की कमी और सहकर्मी दबाव एक ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जहाँ किसान दीर्घकालिक संवहनीय अभ्यासों के बजाय तात्कालिक एवं लागत प्रभावी समाधानों को प्राथमिकता दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पराली दहन के हानिकारक प्रभावों के बारे में जागरूकता की कमी भी इस दुश्चक्र को बनाए रखती है।

फसल अवशेष दहन

फसल अवशेष दहन से उत्पन्न हाने वाली समस्याएँ–

- **पर्यावरणीय क्षरण:** फसल अवशेष जलाने से हवा, मृदा और जल में हानिकारक प्रदूषक का उत्सर्जन होता है जो पर्यावरणीय क्षरण में योगदान करते हैं।
- फसल अवशेषों को जलाने से वायुमंडल में बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जो ग्लोबल वार्मिंग में योगदान करते हैं।
- इससे खेतों से पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्त्वों की, जैविक कार्बन की और मृदा की सतह पर मृदा कटाव से रक्षा के लिये आवश्यक पौध अवशेषों की हानि होती है।
- अवशेष जलाने से 100 प्रतिशत नाइट्रोजन, 25 प्रतिशत फास्फोरस, 20 प्रतिशत पोटाश एवं करीब 60 प्रतिशत सल्फर का नुकसान होता है।
- खाद्य और कृषि संगठन के कॉर्पोरेट स्टैटिस्टिकल डेटाबेस के अनुसार, भारत में फसल अवशेष दहन से वर्ष 2020 में लगभग 23 मिलियन टन CO_2 समतुल्य उत्सर्जन हुआ।
- जैव विविधता का क्षरण: यह लाभकारी सूक्ष्मजीवों, कीड़ों और पादपों को नष्ट कर कृषि भूमि की जैव विविधता को कम करता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित कर सकता है और फसलों को कीटों एवं बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है।

- मृदा क्षरण: फसल अवशेष दहन से मृदा की उर्वरता कम हो सकती है और लाभकारी सूक्ष्मजीव नष्ट हो सकते हैं।
- भूमि में उपलब्ध जैव विविधता समाप्त हो जाती है। इससे मिट्टी में होने वाली रसायनिक क्रियाएं भी प्रभावित होती हैं, जैसे कार्बन–नाईट्रोजन एवं कार्बन–फास्फोरस का अनुपात बिगड़ जाता है, जिससे पौधों को पोषक तत्व ग्रहण करने में कठनाई होती है।
- भूमि की संरचना में क्षति होने से पोषक तत्वों की समुचित मात्रा में पौधों को उपलब्ध नहीं होने से जल निकासी संभव नहीं हो पाती है।
- इससे समय के साथ मृदा की उर्वरता और फसल की पैदावार में कमी आ सकती है।
- वायु प्रदूषण में योगदान: फसल अवशेष दहन से वायुमंडल में बड़ी मात्रा में कणिका पदार्थ (PM), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), मीथेन (CH_4), नाइट्रस अश्वक्साइड (N_2O), अमोनिया (NH_3) और नॉन–मीथेन वाष्पशील कार्बनिक यौगिक का उत्सर्जन होता है।
- ये प्रदूषक संपर्क में आने वाले लोगों के लिये श्वसन संबंधी समस्याएँ, हृदय रोग, कैंसर और समयपूर्व मृत्यु का कारण बन सकते हैं।

फसल अवशेषों को खेत में मिलाना भूमि के लिए लाभदायक : फसल अवशेषों को आग के हवाले करने की जगह किसान भाइयों को चाहिए की वे इन फसल अवशेषों को रोटावेटर या डिस्क हेरो आदि की सहायता से भूमि में मिला दें। इससे जीवांश के रूप में खाद की बचत की जा सकती है। फसल अवशेषों को खेत में मिलाने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढने के साथ ही अनेक लाभ मिलते है। भूसे में नत्रजन 0.5, प्रतिशत, फास्फोरस 0.6 और पोटाश 0.6 प्रतिशत पाया जाता है, जो नरवाई में जलकर नष्ट हो जाता है। फसल के दाने से डेढ़ गुना भूसा होता है अर्थात् यदि एक हेक्टयर में 40 क्विंटल गेहूं का उत्पादन होगा तो भूसे की मात्रा 60 क्विंटल होगी और भूसे से 30 किलो नत्रजन, 36 किलो फास्फोरस, 36 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर प्राप्त होगा। जो वर्तमान मूल्य के आधार पर लगभग 3,000 रुपए का होगा जो जलकर नष्ट हो जाता है।

फसल अवशेषों को खेत में मिला देने से होने वाले लाभ

- किसान फसल अवशेषों को रोटावेटर की सहायता से खेत में मिला कर जैविक खेती का लाभ ले सकते हैं।
- फसल अवशेषों को खेत में ही मिला देने से जैव विविधता बनी रहती है। जमीन में मौजूद मित्र कीट शत्रु कीटों को खा कर नष्ट कर देते हैं। जमीन में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है, जिस से फसल उत्पादन ज्यादा होता है।
- दलहनी फसलों के अवशेषों को जमीन में मिलाने से नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे फसल उत्पादन भी बढ़ता है।
- किसानों द्वारा फसल अवशेष जलाने के बजाय भूसा बना कर रखने पर जहां एक ओर उनके पशुओं के लिए चारा मौजूद होगा, वहीं अतिरिक्त भूसे को बेच कर वे आमदनी भी बढ़ा सकते हैं।

धान की फसल में अवशेष प्रबंधन

फसल अवशेषों का प्रबंधन : किसानों की सुविधा के लिए वैज्ञानिकों की ओर से कई सुझाव दिए गए हैं ताकि उनको प्रबंधन करने में किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़े। ये सुझाव इस प्रकार हैं–

- फसल अवशेषों को पशु चारा अथवा औद्योगिक प्रबंधन के लिए एकत्रित किया जा सकता है।
- धान की पुआल का यूरिया व कैल्शियम हाइड्रोक्सॉइड से उपचार या फिर प्रोटीन द्वारा संवर्धन कर पशु चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- खेत में स्ट्रा बेलन मशीन की मदद से फसल अवशेषों का ब्लॉक बनाकर कम जगह में भंडारित करते हुए पशु चारा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
- गेहूं के फानों पर रीपर मशीन को चलाकर भूसा बनाया जा सकता है।
- फसल अवशेषों को मशरूम की खेती में सार्थक प्रयोग किया जाना संभव है।
- वर्तमान में किसान आग लगाने की बजाय गेहूं की कटाई के बाद खेत में खड़े फानों में किसान जीरो टिलेज मशीन या टर्बो हैप्पी सीडर से मूंग या ढैंचा की बुआई कर फसल अवशेष प्रबंधन कर सकते हैं।

अ स्वच्छ ऊर्जा के लिये फसल अवशेष का उपयोग: फसल अवशेषों को जलाकर बर्बाद करने के बजाय स्वच्छ नवीकरणीय ऊर्जा के उत्पादन के लिये इनका कुशलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

- सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट' की एक रिपोर्ट के अनुसार, लगभग 10 किलोग्राम कृषि अवशेष 1 किलोग्राम संपीडित बायोगैस उत्पन्न कर सकते हैं।
- तीन वर्ष के अनुसंधान कार्य के आधार पर सिफारिश कृषि तकनिकी से गेंहूँ की फसल को कम्बाईन मशीन से कटाई करने के तुरन्त बाद भूमि में पानी लगाकर 25 किलोग्राम/हैक्टर यूरिया व 2.0 किलोग्राम/हैक्टर सेल्यूलोलाइटिक माइक्रोब (अवशेषों को विघटित करने वाली जीवाणु) के साथ अवशेषों को मिट्टी में दबाने के तदुपरान्त सोयाबीन की फसल में 125 प्रतिशत अनुशंषित उर्वरको (25 किलोग्राम नत्रजन : 50 किलोग्राम फॉस्फोरस : 50 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर) की मात्रा के साथ फूल बनते समय एवं फली पकते समय सिंचाई करने पर गेंहूँ के अवशेषों को आग लगाने की तुलना में गेंहूँ–सोयाबीन फसल प्रणाली के अन्तर्गत मृदा में भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार के साथ साथ, 12.79 % उत्पादकता में, 8.87 % लाभप्रदता में एवं 8.21 % जल धारण क्षमता में वृद्धि पाई गई।

गेंहूँ–सोयाबीन फसल प्रणाली में अवशेष प्रबंधन

जैविक एवं प्राकृतिक कृषि में उपयोग हेतु गौ-मूत्र आधारित जैविक आदान

श्रवण कुमार यादव, प्रीती देवतवाल एवं भवानी शंकर मीणा

कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्राचीन काल से ही गौ–मूत्र को कृषि तथा मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गौ–मूत्र में आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटाश, सोडियम, कॉपर, कार्बोनिक अम्ल व लेक्टोज पाया जाता है। गौ–मूत्र से बनी दवाओं का प्रयोग मनुष्यों की विभिन्न बीमारियों के ईलाज में भी किया जाता है। गौ–मूत्र को संक्रमण दूर करने वाला माना गया है। अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि गौ–मूत्र में कीटनाशी गुण होते हैं जिससे पौधे स्वस्थ व निरोगी रहते हैं।

गौ–मूत्र में लगभग 95 प्रतिशत पानी, 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 2.5 पोषक तत्व, लवण, हार्मोन्स तथा एन्जाइम पाये जाते हैं। इसमें कॉपर, चाँदी तथा सोने के कणों के अलावा एस्ट्रोजन, कोर्टिको स्टेरोइड तथा कीटोस्टेरोइड भी पाये जाते हैं। गौ–मूत्र के 5 से 15 प्रतिशत सान्द्रता के घोल का सीधा छिड़काव तथा अन्य पौधों के सत्त जैसे– तुलसी, आम, धतूरा, आदि के साथ मिलाकर इसका प्रयोग फसलों में कवकनाशी, जीवाणुनाशी तथा कीटनाशी के रूप में किया जाता है।

जैविक खेती में गौ–मूत्र आधारित जैविक कीटनाशक, जैविक रोगनाशक तथा जैविक पोषक तत्वों की आपूर्ति हेतु गौ–मूत्र आधारित उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। जैविक खेती में उपयोग में आने वाले गौ–मूत्र आधारित जैविक आदानों को तैयार करने तथा उपयोग विधि का वर्णन निम्नलिखित है–

1. पंचगव्य : पंचगव्य एक जैविक पदार्थ है जो गाय के पाँच उत्पादों यथा गौ–मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घी को मिलाकर बनाया जाता है। पंचगव्य का उल्लेख सर्वप्रथम पुराणों में मिलता है। इसका उपयोग करने पर पौधों की वृद्धि तथा कीट रोगों पर प्रभावकारी असर होता है। पंचगव्य की क्षमता बढ़ाने के लिए, गन्ने का रस, नारियल का पानी, पका केला या अंगूर के फलों का गूदा उपलब्धता के अनुसार मिलाया जा सकता है, जिसे संवर्धित पंचगव्य कहते हैं। पंचगव्य का उपयोग मृदा एवं फसलों के लिए लाभदायक होता है। पंचगव्य को तैयार करने की अलग–अलग विधियाँ हैं, जिसमें गाय के पाँचों उत्पादों को अलग–अलग अनुपात में मिलाकर किण्वित किया जाता है, लेकिन तमिलनाडु के के. नटराजन द्वारा वर्ष 2003 में बताई गई विधि काफी प्रचलित है जिसका विवरण यहाँ दिया जा रहा है। इस विधि में गौ–मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घी को 10:7:3:2:1 के अनुपात में मिलाकर पंचगव्य तैयार किया जाता है।

सामग्री :

गौ–मूत्र	10 लीटर	गाय का ताजा गोबर	7 किलो
दूध	3 लीटर	दही	2 लीटर
घी	1 किलो	गुड़	1 किलो
कोमल नारियल का पानी	3 लीटर	पके केले	12 नग
पानी	10 लीटर	बड़े मुंह का बर्तन	200 लीटर क्षमता का

विधि

1. गाय का गोबर एवं घी को एक बर्तन/घड़े में अच्छी तरह से मिला लें। इस मिश्रण को दिन में दो बार सुबह एवं शाम 3 दिन तक हिलायें।
2. चौथे दिन गौ–मूत्र तथा पानी को मिलाते हैं। इस सभी सामग्री को दिन में 2 बार 15 दिन तक हिलाते रहते हैं।
3. पन्द्रह दिन बाद दूध तथा दही मिलाते हैं।
4. इसके बाद गुड़ तथा नारियल पानी मिलाते हैं। गुड़ का गर्म पानी में घोल तैयार कर लें तथा 30 मिनट बाद इस घोल को मिलाते हैं।
5. पंचगव्य को दिन में 2 बार हिलाते हैं।
6. पंचगव्य 30 दिन में तैयार हो जाता है। इस प्रकार तैयार घोल पंचगव्य का मातृ घोल कहलाता है।

चित्र 1 : पंचगव्य तैयार करने की विधि

उपयोग

पर्णीय छिड़काव के रूप में : अधिकतर फसलों में 3 प्रतिशत पंचगव्य प्रभावकारी है। 3 लीटर पंचगव्य 100 लीटर पानी को मिलाकर पर्णीय छिड़काव से पहले घोल को छान लेना चाहिए ताकि स्प्रे करते समय नोजल बन्द न हो।

सिंचाई के रूप में : पंचगव्य घोल को सिंचाई के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए मात्रा 20 लीटर/एकड़ की दर से प्रयोग करें। इसे धरातलीय सिंचाई या ड्रिप सिंचाई के साथ प्रयोग में ले सकते हैं।

बीज या पौध उपचार : नर्सरी बेड का 3 प्रतिशत घोल से ड्रेंचिंग करते हैं या पौधों को 3 प्रतिशत घोल में डुबोते हैं। पौध को घोल में 30 मिनट तक रखना चाहिए।

सावधानियाँ : मक्खियों एवं मच्छरों के अण्डों से बचाने के लिए कन्टेनर को मच्छर वाली नेट से ढक देते हैं। इसे 6 माह तक बिना गुणवत्ता परिवर्तित हुए रखा जा सकता है।

जीवामृत : यह एक प्रकार जीवाणु संवर्धन कल्चर है जो भारतीय गाय के गौ–मूत्र तथा गोबर से तैयार किया जाता है। जीवामृत तैयार करने की विधि जीरो बजट प्रा तिक खेती के प्रणेता महाराष्ट्र के सुभाष पालेकर द्वारा 2005–06 में दी गई थी। इसमें पानी की मात्रा के मध्य नजर 5 प्रतिशत गाय का गोबर, 5 प्रतिशत गौ–मूत्र, 1 प्रतिशत बेसन तथा 0.05 प्रतिशत वट वृक्ष के नीचे की या खेतों की मिट्टी का उपयोग किया जाता है।

सामग्री

- 10 किलोग्राम देशी गाय का ताजा गोबर
- 5 से 10 लीटर गौ–मूत्र
- 2 किलो गुड़

- 2 किलो दाल आटा (चना, उड़द, मूंग)
- 200 लीटर पानी
- 100 ग्राम मिट्टी (खेत के मेड़ या पेड़ के नीचे की)

विधि : सर्वप्रथम कोई प्लास्टिक की टंकी या सीमेंट की टंकी लें। इसमें 200 लीटर पानी डालें। पानी में 10 किलोग्राम गाय का गोबर व 10 लीटर गौ–मूत्र एवं 2 किलो गुड़ मिलाएँ। इसके बाद 2 किलो बेसन, 100 ग्राम मेड़ की मिट्टी या जंगल की मिट्टी डालें और सभी को डंडे से मिलाएँ। इसके बाद टंकी को जालीदार कपड़े से बंद कर दें। सुबह शाम डंडे से घोल को हिलाएँ। 48 घंटे बाद जीवामृत तैयार हो जायेगा। इस जीवामृत का प्रयोग केवल सात दिनों तक कर सकते हैं। प्लास्टिक व सीमेंट की टंकी को छाया में रखें जहाँ पर धूप न लगे। गौ–मूत्र को धातु के बर्तन में न रखें। छाया में रखे हुए गोबर का ही प्रयोग करें।

चित्र : 2 जीवामृत तैयार करने की विधि

उपयोग : प्रति एकड़ 200 लीटर तैयार जीवामृत सिंचाई के बहते पानी पर घड़े की सहायता से बूंद–बूंद टपका कर दें। फसलों और पौधों पर जीवामृत के 10 प्रतिशत घोल का छिड़काव कर दें। छिड़काव करने से उनको उचित पोषण मिलता है और दाने/फल स्वस्थ होते हैं।

3. बीजामृत (बीज शोधन) : बीजशोधन का अर्थ है बीजों को बीजजनित और मृदाजनित रोगों से बचाव हेतु तैयार करना। बीजशोधन से बीजों के अंकुरित होने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। बीजशोधन से बीज जल्दी और ज्यादा मात्रा में उगकर आते हैं। जड़ें गति से बढ़ती हैं और भूमि से पेड़ों पर बीमारियों का प्रकोप नहीं होता है। जीरो बजट प्राकृतिक खेती के प्रणेता महाराष्ट्र के सुभाष पालेकर द्वारा 2005 में बताई गई बीजामृत तैयार करने की विधि का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

सामग्री (100 कि.ग्रा. बीज हेतु)

- 5 कि.ग्रा. गाय का गोबर
- 5 लीटर गाय का गौ–मूत्र
- 20 लीटर पानी
- 50 ग्राम चूना
- 100–150 ग्राम मेड़ की मिट्टी

विधि

- 5 किलो देशी गाय के गोबर को कपड़े में बांधकर गाँठ बना लें तथा 20 लीटर पानी में लटकाकर 12 घण्टे तक डुबोकर रखें।
- प्राप्त घोल में से एक लीटर घोल लेकर इसमें 50 ग्राम चूना मिलायें तथा रातभर के लिए रख दें।
- इसके बाद सुबह गोबा वाली गाँठ को निचोड़कर पानी में इसका पूरा सत्त निकाल लें। अब इस पानी में 100 से 150 ग्राम खेत या मेड़ की मिट्टी डालकर तेजी से हिलायें।
- इस घोल में 5 लीटर गौ–मूत्र मिलायें।
- आखिरी में इसमें चूना पानी मिलायें और घोल को अच्छी तरह से हिलायें।

चित्र : 3 बीजामृत तैयार करने की विधि

उपयोग : बुवाई के 24 घंटे पहले बीजशोधन करना चाहिए। बीजामृत तैयार हो जाने के बाद बीजों के जमीन में फैलाकर उसके ऊपर बीजामृत का छिड़काव कर हाथ से बीजों पर बीजामृत की परत चढ़ायें। बीजों को छाया में सुखाएं और इसके बाद बीज बोएँ।

4. मटका खाद

सामग्री तथा विधि

- 5 कि.ग्रा. ताजा गोबर, देशी गाय का 5 लीटर गोमूत्र तथा 5 लीटर पानी लेकर सभी को मिट्टी के घड़े में घोल लें। उसमें 250 ग्राम गुड़ भी मिला दें।
- इस घोल को मिटटी के बर्तन में ऊपर से कपड़ा या टाट से बन्द कर मिटटी में 7–10 दिन के लिए गाड़ दें।

उपयोग

- इस घोल में 200 लीटर पानी मिलाकर 1 एकड़ खेत में समान रूप से छिड़क दें। पुनः 7 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।
- सामान्य फसल में 3 से 4 बार और लम्बी अवधि की फसल में 8–9 बार छिड़काव करें।

चित्र : 4 मटका खाद तैयार करने की विधि

5. अमृत पानी

अमृत पानी तैयार करने की विधि ऋषि कृषि के प्रणेता एम. एस. देशपाण्डे द्वारा वर्ष 2005 में प्रचलित की गई।

सामग्री

- गाय का ताजा गोबर 10 किलो
- गाय का घी 250 ग्राम
- शहद 500 ग्राम
- पानी 100 लीटर

विधि

- देशी गाय के 10 कि.ग्रा. ताजे गोबर में 500 ग्राम शहद मिलाकर फेंटें।
- इस मिश्रण में 250 ग्राम गाय का घी डालकर तेजी से मिलायें।
- इसमें ताजा मिश्रण या घोल ही उपयोग में लिया जाता है। किण्वन नहीं किया जाता है।

चित्र : 5 अमृत पानी तैयार करने की विधि

उपयोग

- 1 कि.ग्रा. मिश्रण को पतला कर बीज पर छिड़क कर उपचारित/संस्कारित करें जिससे बीज पर मिश्रण की हल्की–सी परत चढ़ जाये। इसे छाया में सुखाकर बुवाई करें।
- अमृत पानी का छिड़काव बुवाई से पूर्व खेतों में किया जा सकता है। उक्त प्रकार से तैयार 10 कि.ग्रा. मिश्रण को 200 ली. पानी में घोलकर 1 एकड़ खेत में छिड़काव करें।

लाभ

- इसका उपयोग बीज अंकुरण तथा पौधों की वानस्पतिक वृद्धि में सहायक होता है। इसका उपयोग भूमि में मित्र जीवाणुओं की संख्या तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने में सहायक होता है।

6. अमृत जल

अमृत जल एक किण्वित द्रव्य है, जो देशी गाय के गौ–मूत्र, गोबर, गुड़ तथा पानी के मिश्रण से तैयार किया जाता है। अमृत जल तैयार करने की विधि नेटुको फार्मिंग के प्रणेता एस. ए. दाभोलकर द्वारा वर्ष 2001 में दी गई है।

सामग्री

- गौ–मूत्र 1 लीटर
- गाय का ताजा गोबर 1 किलो
- गुड़ 50 ग्राम
- पानी 10 लीटर

विधि

उपरोक्त सामग्री को मिलाकर तीन दिन तक किण्वित करें। प्रतिदिन इस घोल को 2 से 3 बार अवश्य हिलायें। चौथे दिन यह घोल उपयोग में लिया जा सकता है।

उपयोग

10 प्रतिशत अमृत जल का फसलों पर छिड़काव करें।

जैविक कीट एवं रोगनाशक

इनमें गौ–मूत्र, तीन घोल जैव कीटनाशी, तीखा सत्त, दशपर्णी अर्क तथा ब्रह्मास्त्र का उपयोग किया जाता है।

1. गौ–मूत्र

एक लीटर गौ–मूत्र को 20 लीटर पानी मे मिलाकर पर्णीय छिड़काव से अनेक रोगाणुओं तथा कीटों के प्रबधंन के साथ–साथ फसल वृद्धि नियामक का कार्य भी होता है।

2. तीन घोल जैव–कीटनाशी

सामग्री एवं विधि

मिश्रण 1: तीन कि.ग्रा. पीसी हुई नीम की पत्तियाँ तथा 1 कि.ग्रा. निम्बोली को पाउडर, को 10लीटर गौ–मूत्र एक ताम्र घट (15 लीटर क्षमता का) में मिलाकर उबालें जब तक इसकी मात्रा आधी न रह जाये। इसके बाद इस घोल को 10 दिनों तक सड़ने दें।

मिश्रण 2: लगभग 500 ग्राम पीसी हुई हरी मिर्च को 1 लीटर पानी में रातभर भिगोकर रखें।

मिश्रण 3: लगभग 250 ग्राम पीसा हुआ लहसुन को 1 लीटर पानी में मिलाकर रातभर के लिए रखें।

चित्र : 6 तीन घोल जैव कीटनाशी

उपयोग एवं लाभ

- कीट एवं रोग नियंत्रण के लिए तीनों मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव करें।

3. तीखा सत्त

सामग्री एवं विधि

- 500 ग्राम हरी तीखी मिर्च, 500 ग्राम लहसुन, 1 कि.ग्रा. धतूरा पत्ती, 500 ग्राम नीम पत्ती को 10 लीटर गौ–मूत्र में कुचलें।
- इसे तब तक उबालें जब तक कि यह घटकर आधा न रह जाये।
- सत्त्स को निचोड़ कर छाने तथा शीशे या प्लास्टिक बोतलों में भडांरित करें।

चित्र : 7 तीखा सत्त

उपयोग एवं लाभ

- 3 लीटर सत्त में 100 लीटर पानी मिलायें। यह एक एकड़ छिड़काव हेतु पर्याप्त है। इसके प्रयोग से पत्ती लपेट कीट, तना, फल तथा फली छेदक के नियत्रंण में लाभकारी है।

4. दशपर्णी अर्क

दशपर्णी अर्क का प्रयोग सभी तरह से रस चूसक कीट और सभी इल्लियों के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

सामग्री

- 10 लीटर गौ–मूत्र
- 2 किलोग्राम गाय का गोबर
- 5 किलोग्राम नीम की पत्तियाँ
- 2 किलोग्राम करंज के पत्ते
- 2 किलोग्राम सीताफल के पत्ते
- 2 किलोग्राम धतूरा के पत्ते
- 2 किलोग्राम तुलसी के पत्ते
- 2 किलोग्राम पपीता के पत्ते
- 2 किलोग्राम गेंदा के पत्ते
- 2 किलोग्राम बेल के पत्ते
- 2 किलोग्राम कनेर की पत्तियाँ
- 500 ग्राम तम्बाकू की पत्तियाँ
- 500 ग्राम लहसुन
- 500 ग्राम पिसी हल्दी
- 500 ग्राम तीखी हरी मिर्च
- 200 ग्राम अदरक या सोंठ
- 200 लीटर पानी

विधि : सर्वप्रथम एक प्लास्टिक के ड्रम में 200 लीटर पानी डालें, फिर इसमें 2 किलोग्राम गाय का गोबर और 10 लीटर गौ–मूत्र मिला दें। अब इसमें नीम, करंज, सीताफल, धतूरा, बेल, तुलसी, पपीता, करंज, कनेर तथा गैंदा की पत्ती की चटनी डालें और डंडे से हिलायें। दूसरे दिन तम्बाकू, मिर्च, लहसुन, सोंठ तथा हल्दी डालें। फिर डंडे से हिलाकर जालीदार कपड़े से बंद कर दें। प्रतिदिन सुबह शाम डंडे से जरूर हिलाते रहें और 40 दिन छाया में रखा रहने दें।

उपयोग : प्रति एकड़ के लिए 200 लीटर पानी में 10 लीटर दशपर्णी अर्क मिलाकर छिड़काव करें। इसको छः माह तक प्रयोग कर सकते हैं। इस दशपर्णी अर्क को छाया में रखें। घोल को सुबह–शाम हिलाना चाहिए।

5. ब्रम्हास्त्र

ब्रम्हास्त्र का उपयोग कीट और सूंडी इल्लियों आदि कीटों के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

सामग्री

- 10 लीटर गौ–मूत्र
- 3 किलोग्राम नीम की पत्ती
- 2 किलोग्राम करंज की पत्ती
- 2 किलोग्राम सीताफल पत्ती
- 2 किलोग्राम बेल के पत्ते
- 2 किलोग्राम अरंडी पत्ती
- 2 किलोग्राम धतूरा के पत्ते

विधि : मिट्टी के बर्तन में गौ–मूत्र डालकर उसमें उपरोक्त पत्तों की चटनी कर के कोई भी पांच प्रकार की चटनी को मिला दें। अब बर्तन आग में चढ़ा कर मिश्रण को उबालें। जब चार उबाल आ जाएं तो आग से उतारकर 48 घंटे छाया में ठंडा होने दें। इसके बाद कपड़े से छानकर प्रयोग करें।

उपयोग : प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में तैयार 10 लीटर ब्रम्हास्त्र को छान कर मिलाएँ और स्प्रे मशीन से छिड़काव करें। ब्रम्हास्त्र का प्रयोग छः माह तक कर सकते हैं। भण्डारण मिट्टी के बर्तन में करें। ब्रम्हास्त्र को छाया में रखें एवं धूप से बचाएँ। गौ–मूत्र प्लास्टिक के बर्तन में ले या रखें।

आधुनिक डेयरी फार्मिंग: विज्ञान, तकनीक और मुनाफे का संगम

विक्रमजीत सिंह, अशोक चौधरी, सुरेश चंद कांटवा एवं गुलाब चौधरी

कृषि विज्ञान केन्द्र, हनुमानगढ़-II (नोहर), राजस्थान पशुचिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारत में डेयरी क्षेत्र लंबे समय से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ रहा है, परंतु हाल के वर्षों में यह क्षेत्र संरचना, संवर्धन और प्रबंधन के स्तर पर तेजी से विकसित हुआ है। आधुनिक डेयरी फार्मिंग पारंपरिक, असंगठित व्यवस्था से आगे बढ़कर उन्नत तकनीक, वैज्ञानिक पोषण, आनुवंशिक सुधार और सुदृढ़ स्वास्थ्य प्रबंधन के साथ एक पूरी तरह व्यावसायिक और उच्च–रिटर्न कृषि उद्यम के रूप में उभरी है।

भारत जैसे देश में, जहाँ दूध की खपत लगातार बढ़ रही है, आधुनिक डेयरी फार्मिंग ग्रामीण युवाओं और उद्यमियों के लिए एक आकर्षक और स्थायी करियर विकल्प बन गया है।

1. मुख्य स्तंभ : नस्ल सुधार और पशु चयन

आधुनिक फार्मिंग की नींव सही पशुओं के चयन से शुरू होती है।

- **उच्च उत्पादक नस्लें :** स्थानीय नस्लों के साथ–साथ क्रॉस–ब्रीड गायों (जैसे होलस्टीन फ्रीजियन, जर्सी) का चयन किया जाता है, जिनकी आनुवंशिक क्षमता अधिक दूध देने की होती है।
- **वैज्ञानिक प्रजनन :** प्राकृतिक गर्भाधान के बजाय कृत्रिम गर्भाधान या एम्ब्रियो ट्रांसफर जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है ताकि अगली पीढ़ी के पशुओं में दूध उत्पादन की क्षमता और बेहतर हो सके।

2. पौष्टिक और संतुलित आहार

पशुओं का आहार ही उनकी उत्पादकता का मुख्य निर्धारक है। आधुनिक फार्म में ''टोटल मिक्स्ड राशन'' का उपयोग होता है।

- **टोटल मिक्स्ड राशन क्या है:** टोटल मिक्स्ड राशन एक वैज्ञानिक रूप से तैयार किया गया आहार मिश्रण है जिसमें सूखा चारा (जैसे भूसा), हरा चारा (जैसे मक्का साइलेज), दाना, खनिज मिश्रण और विटामिन सही अनुपात में मिलाए जाते हैं।
- **लाभ :** यह सुनिश्चित करता है कि पशु को उसकी शारीरिक जरूरत और उत्पादन जरूरत (दूध देना) के अनुसार सटीक पोषण मिले, जिससे पाचन बेहतर होता है और दूध की गुणवत्ता (फैट और एसएनएफ) बढ़ती है।

3. तकनीकी एकीकरण और स्वचालन

आधुनिक डेयरी फार्म की पहचान उसमें इस्तेमाल होने वाली तकनीकें हैं जो श्रम को कम करती हैं और दक्षता बढ़ाती हैं:

- **स्वचालित मिल्किंग पार्लर :** बड़े फार्मों में रोटरी या पैरेलल मिल्किंग सिस्टम होते हैं। ये मशीनें न केवल तेजी से दूध निकालती हैं, बल्कि थनैला रोग के जोखिम को कम करती हैं और दूध की स्वच्छता बनाए रखती हैं।
- **फार्म मैनेजमेंट सॉफ्टवेयर :** प्रत्येक पशु के डेटा को ट्रैक किया जाता है उसका जन्म कब हुआ, टीकाकरण कब हुआ, उसने कितना दूध दिया, और वह कब हीट (गर्मी) में आई। ये सॉफ्टवेयर प्रबंधन को डेटा–आधारित निर्णय लेने में मदद करते हैं।
- **पर्यावरण नियंत्रण :** शेड में तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित करने के लिए फॉगर्स, पंखे और स्प्रिंकलर सिस्टम लगाए जाते हैं ताकि पशुओं को गर्मी के तनाव से बचाया जा सके, जिससे दूध उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4. स्वास्थ्य और स्वच्छता प्रबंधन

स्वच्छता आधुनिक डेयरी फार्मिंग का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है।

- **बायो–सिक्योरिटी (Bio-security) :** फार्म पर बाहरी लोगों और वाहनों की आवाजाही को नियंत्रित किया जाता है ताकि बीमारियों का प्रवेश रोका जा सके।
- **नियमित पशु चिकित्सा :** पशु चिकित्सक नियमित रूप से फार्म का दौरा करते हैं। निवारक दवाएं और टीकाकरण कार्यक्रम सख्ती से पालन किए जाते हैं।

5. आर्थिक पहलू और बाजार से जुड़ाव

आधुनिक डेयरी फार्मिंग एक बड़ा निवेश मांगती है, लेकिन रिटर्न भी बेहतर होता है।

- **लागत :** शेड निर्माण, मशीनों की खरीद, उच्च नस्ल के पशुओं की खरीद और शुरुआती चारे की व्यवस्था में अच्छा–खासा निवेश लगता है।
- **मुनाफा :** दूध की गुणवत्ता (फैट%) के आधार पर दूध सहकारी समितियों या निजी कंपनियों को बेचा जाता है। कई फार्म खुद की प्रोसेसिंग यूनिट लगाकर वैल्यू एडिशन (Value Addition) करते हैं, जैसे पनीर, घी, या दही बनाना, जिससे मुनाफा कई गुना बढ़ जाता है।

लाभ और अवसर

- **बढ़ी हुई लाभप्रदता :** प्रति पशु उत्पादकता और दूध की गुणवत्ता बढ़ाकर, आधुनिक फार्म बेहतर रिटर्न देते हैं।
- **मूल्य संवर्धन :** दूध को पनीर, दही, और घी जैसे मूल्य वर्धित उत्पादों में संसाधित करने के अवसर मौजूद हैं, जो तरल दूध की तुलना में अधिक लाभ मार्जिन प्रदान करते हैं।
- **टिकाऊ प्रथाएं :** कुशल संसाधन उपयोग, उचित अपशिष्ट प्रबंधन (बायोगैस उत्पादन), और मूल्य संवर्धन स्थिरता और पर्यावरणीय प्रबंधन को बढ़ाते हैं।

चुनौतियाँ

- **पूंजी–गहन :** एक आधुनिक फार्म शुरू करने के लिए उच्च–गुणवत्ता वाले पशुधन, बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता होती है।
- **चारा की कमी :** भारत में गुणवत्तापूर्ण हरे और सूखे चारे की निरंतर कमी का सामना करना पड़ता है, जो दूध उत्पादन को प्रभावित करता है।
- **ज्ञान अंतराल :** कई पारंपरिक किसानों के बीच आधुनिक तकनीकों और वैज्ञानिक प्रबंधन प्रथाओं में जागरूकता और प्रशिक्षण की कमी व्यापक रूप से अपनाने में बाधा डालती है।

निष्कर्ष

आधुनिक डेयरी फार्मिंग विज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रबंधन का एक उच्च–स्तरीय संगम है, जो भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन की क्षमता रखता है। यह एक ऐसा उद्यम है जिसमें अनुशासित प्रबंधन, सही निवेश और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर दीर्घकालिक, स्थिर और उच्च लाभप्रद व्यवसाय स्थापित किया जा सकता है।

पान का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन: आय बढ़ाने के नए अवसर

प्रियांशु त्रिपाठी एवं मुकेश कुमार नायक
कृषि विज्ञान केन्द्र, करौली

भारत में पान के ताजे पत्तों को पान के नाम से जाना जाता है, जिसका सेवन देश भर में लगभग 15–20 मिलियन लोग करते हैं। भारत में लगभग 55,000 हेक्टेयर भूमि पर पारंपरिक तरीकों से इसकी खेती की जाती है, जिससे सालाना लगभग 90 करोड़ रुपये का उत्पादन होता है। औसतन, इस उत्पादन का लगभग 66% हिस्सा पश्चिम बंगाल राज्य का है, जहां लगभग 20,000 हेक्टेयर भूमि पर इसकी खेती की जाती है, जिसमें लगभग 4–5 लाख बोरोज (सुपारी के खेत) शामिल हैं और लगभग इतने ही कृषि परिवारों को रोजगार मिलता है। भंडारण, परिवहन और अधिकता के मौसम में पत्तों की भारी बर्बादी होती है। इसके अलावा, यदि अतिरिक्त पत्तों का उचित निपटान नहीं किया जाता है, तो वे पर्यावरण प्रदूषण और स्वास्थ्य संबंधी खतरे पैदा कर सकते हैं। अतिरिक्त पान के पत्तों से आवश्यक तेल निकालने सहित विभिन्न तरीकों से इस बर्बादी को कम किया जा सकता है। इस तेल का उपयोग दवाओं, इत्र, माउथ फ्रेशनर, टॉनिक, खाद्य योजक आदि के निर्माण में औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जा सकता है। पत्तियां पौष्टिक होती हैं और इनमें कैंसररोधी तत्व पाए जाते हैं, जो रक्त कैंसर की दवा के निर्माण के लिए आशाजनक हैं। कुछ विवादित रिपोर्टों में यह भी दावा किया गया है कि पान के पत्तों का अत्यधिक सेवन मुंह के कैंसर का कारण बन सकता है। इस फसल की कृषि, औद्योगिक, आर्थिक, औषधीय और संबंधित संभावनाओं पर चर्चा की गई है।

पान का पोषण मान (Nutritional Value of Paan Leaves)
पान के पत्ते (Betel Leaf) केवल स्वाद के लिए ही नहीं बल्कि पोषण और औषधीय गुणों के लिए भी जाने जाते हैं। इनमें कई प्रकार के विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं।

100 ग्राम पान के पत्तों का अनुमानित पोषण मान

ऊर्जा	(Energy) लगभग 44 kcal
कार्बोहाइड्रेट	6.1 g
प्रोटीन	3.1 g
वसा (Fat)	0.8 g
कैल्शियम	230 mg
फॉस्फोरस	40 mg
आयरन	7 mg
विटामिन C	5–7 mg
फाइबर	2–3 g
पानी लगभग	85–90:

पान के पत्तों के स्वास्थ्य लाभ (Health Benefits of Betel Leaves)
पान के पत्ते केवल खाने के लिए ही नहीं, बल्कि कई औषधीय गुणों के कारण स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी माने जाते हैं। आयुर्वेद में पान के पत्तों का उपयोग कई घरेलू उपचारों में किया जाता है।

1. पाचन में सहायक पान के पत्ते पाचन क्रिया को बेहतर बनाते हैं। भोजन के बाद पान खाने से गैस, अपच और पेट भारीपन में राहत मिल सकती है।
2. मुँह की दुर्गंध दूर करना पान के पत्तों में एंटीबैक्टीरियल गुण होते हैं, जो मुँह के बैक्टीरिया को कम करके दुर्गंध दूर करने में मदद करते हैं।
3. खांसी और सर्दी में लाभ पान के पत्तों का रस या गर्म पान का पत्ता छाती पर लगाने से खांसी और सर्दी में आराम मिल सकता है।
4. घाव भरने में सहायक पान के पत्तों में एंटीसेप्टिक गुण होते हैं, जो छोटे घाव और संक्रमण को जल्दी भरने में मदद करते हैं।
5. **सूजन कम करने में मदद** पान के पत्ते में सूजन कम करने वाले गुण होते हैं, इसलिए इसे सूजन या दर्द वाली जगह पर लगाने से राहत मिल सकती है।
6. **श्वसन तंत्र के लिए लाभकारी :** पान के पत्ते श्वसन तंत्र को साफ रखने में मदद करते हैं और बलगम को कम करने में सहायक होते हैं।
7. **त्वचा के लिए उपयोगी :** पान के पत्तों का रस त्वचा पर लगाने से खुजली, फोड़े–फुंसी और त्वचा संक्रमण में लाभ मिल सकता है।
8. **एंटीऑक्सीडेंट गुण :** पान के पत्तों में एंटीऑक्सीडेंट होते हैं, जो शरीर को रोगों से बचाने और प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मदद करते हैं।

पान का प्रसंस्करण (Processing of Paan) : पान के पत्तों को तोड़ने के बाद उनकी गुणवत्ता बनाए रखने और लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए कुछ प्रक्रियाएँ की जाती हैं।

(1) **छंटाई (Sorting)** कटाई के बाद पत्तों को आकार, रंग और गुणवत्ता के आधार पर अलग–अलग किया जाता है। खराब या टूटे पत्तों को अलग कर दिया जाता है।
(2) **सफाई (Cleaning)** पत्तों को साफ पानी से हल्के से धोकर धूल–मिट्टी हटाई जाती है।
(3) **ग्रेडिंग (Grading)** बाजार की मांग के अनुसार पत्तों को छोटे, मध्यम और बड़े आकार में वर्गीकृत किया जाता है।
(4) **पैकिंग (Packing)** पत्तों को ताजगी बनाए रखने के लिए केले के पत्तों, टोकरी या विशेष पैकेट में पैक किया जाता है। इससे पत्ते जल्दी खराब नहीं होते।
(5) **भंडारण (Storage)** पान के पत्तों को ठंडी और नम जगह पर रखा जाता है, ताकि उनकी ताजगी बनी रहे।

पान के मूल्य संवर्धित उत्पाद (Value Added Products of Betel Leaf) : पान के पत्तों का प्रसंस्करण करके कई प्रकार के मूल्य संवर्धित (Value Added) उत्पाद बनाए जा सकते हैं। इससे पान की मांग बढ़ती है, बर्बादी कम होती है और किसानों व महिला स्वयं सहायता समूह (SHG) को अतिरिक्त आय मिलती है।

प्रमुख मूल्य संवर्धित उत्पाद

1. **मीठा पान (Sweet Paan)** पान के पत्तों में गुलकंद, सौंफ, नारियल, इलायची आदि भरकर तैयार किया जाता है। यह बहुत लोकप्रिय उत्पाद है।
2. **पान मुखवास (Paan Mukhwas)** सूखे पान के टुकड़ों को सौंफ, मिश्री और मसालों के साथ मिलाकर मुखवास बनाया जाता है।
3. **पान जूस / पान शरबत :** पान के पत्तों का अर्क निकालकर उससे स्वादिष्ट पेय पदार्थ तैयार किया जाता है।
4. **पान कैंडी :** पान के फ्लेवर से कैंडी या टॉफी बनाई जाती है, जिसकी बाजार में अच्छी मांग होती है।
5. **पान आइसक्रीम / कुल्फी :** पान के स्वाद से आइसक्रीम और कुल्फी बनाकर बेची जाती है, जो युवाओं में लोकप्रिय है।
6. **पान चटनी :** पान के पत्तों, हरी मिर्च, नींबू और मसालों से स्वादिष्ट चटनी बनाई जाती है।
7. **पान पाउडर :** पान के पत्तों को सुखाकर पीसकर पाउडर बनाया जाता है, जिसका उपयोग खाद्य पदार्थों और औषधि में किया जाता है।
8. **पान फ्लेवर सिरप** पान के अर्क से फ्लेवर सिरप बनाकर पेय पदार्थों और मिठाइयों में उपयोग किया जाता है

निष्कर्ष (Conclusion) : पान के पत्ते केवल पारंपरिक रूप से खाने तक सीमित नहीं है, बल्कि इनके प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के माध्यम से अनेक प्रकार के उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। पान से बने उत्पाद जैसे पान मुखवास, पान कैंडी, पान शरबत, पान चटनी आदि बाजार में अच्छी मांग रखते हैं। पान का मूल्य संवर्धन करने से किसानों की आय बढ़ती है, पत्तों की बर्बादी कम होती है और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा होते हैं, विशेष रूप से महिला स्वयं सहायता समूहों (SHG) के लिए। इसलिए पान के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

❋❋❋

आदर्श पोषण वाटिका : संतुलित आहार एवं अतिरिक्त आमदनी का स्रोत

हेमराज मीना, गोपाल लाल मीना, टी.एस. चैत्रा एवं मीनाक्षी मीना
आईसीएआर–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा
शोधार्थी, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उद्यान विज्ञान विभाग, एमपीयूएटी, उदयपुर

परिचय : पोषण वाटिका या रसोई घर बाग या फिर गृह वाटिका उस वाटिका को कहा जाता है जो घर के अगल–बगल या घर के आंगन में ऐसी खुली जगह जहाँ पारिवारिक श्रम से परिवार के इस्तेमाल हेतु विभिन्न मौसमों में मौसमी फल तथा विभिन्न सब्जियाँ उगाई जाती हैं ।

पोषण वाटिका का उद्देश्य : पोषण वाटिका का मकसद रसोई घर के पानी व कूड़ा करकट का इस्तेमाल करके घर की फल व साग सब्जियों की दैनिक जरूरतों को पूरा करना है। आज कल बाजार में बिकने वाली चमकदार फल सब्जियों को रासायनिक उर्वरक प्रयोग करके उगाया जाता है ।रसायनों का इस्तेमाल खरपतवार, कीड़े व बीमारियों को रोकने के लिए किया जाता है । इन रासायनिक दवाओं का कुछ अंश फल सब्जी में बाद तक बना रहता है, जिसके कारण उन्हें इस्तेमाल करने वालों में बीमारियों से लड़ने की ताकत कम होती जा रही हैं । इसके अलावा फलों व सब्जियों के स्वाद में अंतर आ जाता है, इसलिए हमें अपने घर के आंगन या आस पास की खाली जगह में छोटी छोटी क्यारीयां बना कर जैविक खादों का इस्तेमाल करके रसायन रहित फल सब्जियों को उगाना चाहिए ।

स्थान का चयन : पोषण वाटिका के लिए स्थान चुनने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती, क्योंकि अधिकतर ये स्थान घर के पीछे या आस पास ही होते हैं। घर से मिले होने के कारण थोड़ा कम समय मिलने पर भी काम करने में सुविधा रहती है। गृह वाटिका के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए, जहाँ पानी पर्याप्त मात्रा में मिल सके, जैसे नलकूप या कूएँ का पानी, रसोई घर में इस्तेमाल किया गया पानी जो आसानी से पोषण वाटिका तक पहुँच सके। स्थान खुला हो ताकि उसमें सूरज की भरपूर रोशनी आसानी से पहुँच सके। ऐसा स्थान हो, जो जानवरों से सुरक्षित हो और उस स्थान की मिट्टी उपजाऊ हो ।

पोषण वाटिका का आकार: जहाँ तक पोषण वाटिका के आकार का संबंध है, तो वह जमीन की उपलब्धता, परिवार के सदस्यों की संख्या और समय की उपलब्धता पर निर्भर होता है। लगातार फल चक्र, सघन बागबानी और अंतः फसल खेती को अपनाते हुए एक औसत परिवार, जिसमें 1 औरत, 1 मर्द व 3 बच्चे यानी कुल 5 सदस्य हों, ऐसे परिवार के लिए औसतन 250 वर्गमीटर की जमीन काफी है। इसी से अधिकतम पैदावार लेते हुए पूरे साल अपने परिवार के लिए फल सब्जियों की प्राप्ति की जा सकती है ।

बनावट : आदर्श पोषण वाटिका में बहुवर्षीय पौधों को वाटिका के उस तरफ लगाना चाहिए, जिससे उन पौधों की अन्य दूसरे पौधों पर छाया न पड़ सके। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ये पौधे एकवर्षीय सब्जियों के फसल चक्र और उनके पोषक तत्वों की मात्रा में बाधा न डालें। पूरे क्षेत्र को 8–10 वर्गमीटर की 15 क्यारीयों में विभाजित कर लें और इन बातों का ध्यान रखें –

- वाटिका के चारों तरफ बाड़ का प्रयोग करना चाहिए, जिसमें गर्मी व वर्षा के समय कद्दू वर्गीय पौधों को चढ़ाना चाहिए।
- फसल चक्र व सघन फसल पद्धति को अपनाना चाहिए ।
- 2 क्यारीयों के बीच की मेड़ों पर जड़ों वाली सब्जियों को उगाना चाहिए ।
- रास्ते के एक तरफ टमाटर तथा दूसरी तरफ चौलाई या दूसरी पत्ती वाली सब्जी उगानी चाहिए ।
- वाटिका के दो कोनों पर खाद के गड्ढे होने चाहिए, जिनमें से एक तरफ वर्मीकम्पोस्ट यूनिट और दूसरी तरफ कम्पोस्ट खाद का गड्ढा हो, जिसमें घर का कूड़ा करकट व फसल अवशेष डालकर खाद तैयार की जा सके । इन गड्ढों के ऊपर छाया के लिए सेम जैसी बेल चढ़ाकर छाया बनाए रखें । इससे पोषक तत्वों की कमी भी नहीं होगी तथा गड्ढे भी छिपे रहेंगे ।

पोषण वाटिका के लाभ

- जैविक उत्पाद (रसायन रहित) होने के कारण फल व सब्जियों में काफी मात्रा में पोषक तत्व मौजूद रहते हैं ।
- बाजार में फल सब्जियों की कीमत अधिक होती है, जिसे न खरीदने से अच्छी खासी बचत होती है ।
- परिवार के लिए ताजी फल सब्जियाँ मिलती रहती हैं ।
- वाटिका की सब्जियाँ बाजार के मुकाबले अच्छे गुणों वाली होती हैं ।
- गृहवाटिका लगाकर अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत बना सकते हैं ।
- पोषण वाटिका से प्राप्त मौसमी फल व सब्जियों को परिरक्षित करके सालभर इस्तेमाल किया जा सकता है ।
- यह बच्चों के प्रशिक्षण का भी अच्छा साधन है ।
- यह मनोरंजन और व्यायाम का भी एक अच्छा साधन है ।
- मनोबौदिक दृष्टि से भी खुद उगाई गई फल सब्जियाँ बाजार की फल सब्जियों से अधिक स्वादिष्ट लगती हैं ।

फसल की व्यवस्था : पोषण वाटिका में फल सब्जियों की बीजाई करने से पहले योजना बना लेनी चाहिए, ताकि पूरे साल फल सब्जियाँ मिलती रहें। योजना में निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख होना चाहिए –

- क्यारीयों की स्थिति
- उगाई जाने वाली फसलों के नाम व किस्में
- बुवाई का समय

पोषण वाटिका में इस प्रकार साल भर फसल चक्र अपनाने से अधिक फल सब्जियाँ प्राप्त होती हैं –

प्लाट नम्बर	फल सब्जियों के नाम	इनके अलावा अन्य सब्जियों को भी जरूरत के मुताबिक उगा सकते हैं
1	आलू, लोबिया, अगेती फूल गोभी	• मेड़ों पर मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर, धनिया, पोदीना, प्याज व हरे साग वगैरह लगाने चाहिए । • बेल वाली सब्जियों जैसे लौकी, तुरई, छप्पन कददू, परवल, करेला, सीताफल वगैरह को बाड़ के रूप में किनारों पर ही लगाना चाहिए । • वाटिका में पपीता, अनार, नींबू, करौंदा, केला, अंगूर, अमरूद वगैरह के पौधों को सघन विधि से इस प्रकार किनारे की तरफ लगाएं, जिससे सब्जियों पर छाया न पड़े और पोषक तत्वों के लिए मुकाबले न हो । • इस फसल चक्र में कुछ यूरोपियन सब्जियाँ भी रखी गई हैं, जो कुछ अधिक पोषण युक्त होती हैं व कैंसर जैसी बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखते हैं । • पोषण वाटिका को और अधिक आकर्षत बनाने के लिए उसमें कुछ सजावटी पौधे भी लगाए जा सकते हैं ।
2	पछेती फूल गोभी, लोबिया, लोबिया (वर्षा)	
3	पत्ता गोभी, ग्वार, फ्रेंचबीन	
4	मटर, भिण्डी, टिण्डा	
5	फूल गोभी, गांठ गोभी, मूली, प्याज	
6	बैंगन के साथ पालक, अंतः फसल के रूप में खीरा	
7	गाजर, भिण्डी, खीरा	
8	ब्रोकली, चौलाई	
9	पालक, बैंगान (लंबे वाले)	
10	खीरा, प्याज	
11	लहसुन, मिर्च, शिमला मिर्च	
12	चाईनीज कैबेज, प्याज (खरीफ)	
13	अश्वगन्धा (सालभर), अंतःफसल लहसुन	
14	मटर, टमाटर, अरबी	
15	मैथी, बथुआ, कुल्फा	

MODERN MAS

A Symbol of Prosperity

Estd. : 1978

Anurag Jain : 94141-89984
Ashish Jain : 94142-42432
Ph. : 0744-2333603

उच्च क्वालिटी एवं "A" ग्रेड कम्पनी की
कृषि दवाईयाँ थोक एवं रिटेल में उपलब्ध।

MODERN AGRICULTURE SERVICE

Deals in : All kinds of Pesticide & Spray Machine

Regd. Office : Opp. Petrol Pump, Nayapura, Kota-324001 (Raj.)
Email : modernkota@rediffmail.com

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly Owned by Cooperatives

International Year of Cooperatives 2025
Cooperatives Build a Better World

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly Owned by Cooperatives

इफको नैनो उर्वरक अपनाएं
अधिक गुणवत्ता और उपज पाएं

नैनो यूरिया एवं **नैनो डीएपी**
की खरीद पर प्रति बोतल
रू. 10,000/-
का आकस्मिक
दुर्घटना बीमा मुफ्त*

नैनो जिंक
1 मि.ली. नैनो जिंक प्रति लीटर पाली के अनुपात में घोल बनाकर 30-35 दिन की फसल अवस्था में पत्तियों पर छिड़काव करें।

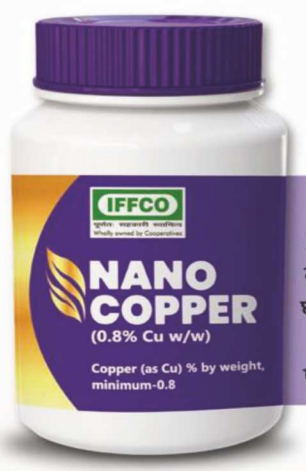

नैनो कॉपर
1 मि.ली. नैनो कॉपर प्रति लीटर पाली के अनुपात में घोल बनाकर 30-35 दिन की फसल अवस्था में पत्तियों पर छिड़काव करें।

नैनो यूरिया प्लस
4 मि.ली. नैनो यूरिया प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रति छिड़काव 500 मि.ली. मात्रा का दो बार, 35-40 दिन एवं 55-60 दिन पर छिड़काव करें।

नैनो डीएपी तरल
नैनो डीएपी का प्रयोग बीज उपचार में 5 मि.ली. प्रति किलो बीज एवं जड़ उपचार में 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर करें। इसके पश्चात खड़ी फसल में 35-40 दिन में 4 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर पत्तियों पर छिड़काव करें।

नैनो यूरिया एवं **नैनो डीएपी**
का उपयोग करने से
पारंपरिक उर्वरकों में
50 % की कटौती

इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड, राजस्थान

स्वामी प्रकाशक : डॉ. प्रताप सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. प्रताप सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ.प्रताप सिंह